संवादसेतु

मीडिया का आत्मावलोकन

अंक 20 | पृष्ठ 28 | जनवरी, 2019 | नई दिल्ली

मंथन का महोत्सव कुंभ

संपादकीय

संपादक

आशुतोष भटनागर

कार्यकारी-संपादक

डॉ. जयप्रकाश सिंह

उप-संपादक

चन्दन आनन्द

रविंद्र सिंह भड़वाल

ई-मेल :

samvadsetu2011@gmail.com

फेसबुक पेज

@samvadsetu2011

अनुरोध

संवादसेतु की इस पहल पर आपकी टिप्पणी एवं सुझावों का स्वागत है। अपनी टिप्पणी एवं सुझाव कृपया उपरोक्त ई-मेल पर अवश्य भेजे।

'संवादसेतु' मीडिया सरोकारों से जुड़े पत्रकारों की रचनात्मक पहल है। 'संवादसेतु' अपने लेखकों तथा विषय की स्पष्टता के लिए इंटरनेट से ली गई सामग्री के रचनाकारों का भी आभार व्यक्त करता है। इसमें सभी पद अवैतनिक हैं।

अनुक्रम

आवरण कथा

मंथन का महोत्सव- कुंभ

(पृष्ठ 4-5-6-7)

मीडिया-वॉच

एवेंजेलिकल मीडिया का एजेंडा

(पृष्ठ 8-9-10)

कला-संवाद

कला और कुंभ में संवाद का समय

(पृष्ठ 11-12-13-14)

जम्मू-कश्मीर

पंचायत चुनावों पर रणनीतिक चुप्पी

(पृष्ठ 15-16-17-18)

ग्राम-पंचायत

खुरदुरे सच को साधने की चुनौती

(पृष्ठ 19-20)

सैटेलाइट-आईज

शिकारी आंखों से कुंभ की कवरेज

(पृष्ठ 21-22-23)

ऐड-रिसेप्शन

भारतीयता का अहम ब्रांड बन चुका है कुंभ

(पृष्ठ 24)

पुस्तक-समीक्षा

अयोध्या के मर्म से परिचय

(पृष्ठ 25)

चलते-चलते

(पृष्ठ 26-27-28)

संपादकीय

कुंभ को देखने-समझने के अलग-अलग दृष्टिकोण हैं। पश्चिम में तो कुंभ आश्चर्यों को पिटारा बन चुका है। नागा साधु, लम्बे नाखून, अनूठे करतब, पश्चिम के लिए यही सब कुंभ है। कुंभ सनातन संदेशों को सम्प्रेषित-पोषित करने का एक महाआयोजन है, इसलिए भी पश्चिम में चर्चा का विषय है या यूं कहें कि पश्चिम के निशाने पर है। खैर, उनकी दृष्टि, उन्हें मुबारक...

कुंभ इस बार अलग कलेवर में दस्तक दे रहा है। सरकार कुछ अधिक सन्नद्ध दिख रही है। सुविधाओं को लेकर चर्चाएं आम हैं। कुंभ की प्रचार-रणनीति भी ध्यान खींच रही है। इन सबके बीच कुंभ के मूल मंतव्यों को लेकर जितनी चर्चा होनी चाहिए, उतनी होती दिख नहीं रही। हमने इस कमी को अपना विषय बनाया। परिणामत: संवादसेतु का यह अंक आपके सामने है।

कुंभ को देखने-समझने के अलग-अलग दृष्टिकोण हैं। पश्चिम में तो कुंभ आश्चर्यों को पिटारा बन चुका है। नागा साधु, लम्बे नाखून, अनूठे करतब, पश्चिम के लिए यही सब कुंभ है। कुंभ सनातन संदेशों को सम्प्रेषित-पोषित करने का एक महाआयोजन है, इसलिए भी पश्चिम में चर्चा का विषय है या यूं कहें कि पश्चिम के निशाने पर है। खैर, उनकी दृष्टि, उन्हें मुबारक।

बड़ा प्रश्न तो यह है हम भारतीय कुंभ के मंतव्य को लेकर कितने सजग है। डुबकी लगाने-पुण्य कमाने की आपाधापी में कुंभ के सामाजिक-सांस्कृतिक सरोकारों के बारे में सोचने के लिए हमारे पास कितना समय है? कुंभ में हम जिस अमरता की चाहत रखकर डुबकी लगाते हैं, उसका स्वरूप क्या है? और इससे भी आगे यह कि क्या कुंभ के वास्तविक स्वरूप से हमारा परिचय आज देश-समाज के सामने खड़ी चुनौतियों का समाधान करने में सहायक हो सकता है ?

हमने भी इन्हीं सब प्रश्नों को लेकर कुंभ की परम्परा में डुबकी लगायी। कुछ तथ्य और दृष्टिकोण हाथ लगे। महसूस हुआ कि इनको साझा किया जाना जरूरी है। जरूरत इसलिए भी लगी क्योंकि कुंभ के दर्शन हमें सबसे व्यापक और प्रभावी संवादसेतु के रूप में हुए, यह मंथन का महोत्सव बन गया।

हमारी खोज में यह संवाद का अनूठा आयोजन है, सम्प्रेषण का प्रभावी प्लेटफार्म है। इसका कलापक्ष भी है ही। कुंभ, मंथन की मानसिकता की देन है और मंथन की संस्कृति को आगे बढ़ाने का जरिया भी। अतिवादिता और कट्टरपंथ के वर्तमान दौर में मंथन की मानसिकता और संवाद की संस्कृति यकायक अधिक महत्वपूर्ण हो उठे हैं, इसीलिए कुंभ की प्रासंगिकता भी बढ़ जाती है।

मीडिया वॉच, ग्राम-पंचायत, सैटेलाइट आईज जैसे कुछ स्थायी स्तम्भ इस बार संवादसेतु में शामिल हो रहे हैं। कोशिश, संचार के सभी पक्षों को समावेशित करने की है। कुंभ का अमृत ढूंढने की कोशिशों में कितनी कामयाबी मिली है, इसका आकलन तो सुधी पाठक ही करेंगे।

प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा में।

— आपका संपादक
आशुतोष भटनागर

मंथन का महोत्सव कुंभ

❐ डॉ. जयप्रकाश सिंह

जल की धाराएं तो हर बार हिमालय से निकल कर सागर में मिल जाती हैं, लेकिन परम्परा की धाराएं कई बार समुद्र से निकलकर कर हिमालय तक पहुंच जाती हैं। परम्पराओं में चतुर्दिक चलने का सामर्थ्य होता है। उनका यही सामर्थ्य देश की सांस्कृतिक एकता का आधार बनता है और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के भाव को गढ़ता है। समुद्र मंथन की कथा परम्पराओं के चहुंओर बढ़ने के इस सामर्थ्य का उदाहरण है। एक ऐसी कथा जिसके केन्द्र में समुद्र है, लेकिन उसकी उपस्थिति और प्रभाव अखिल भारतीय है।

समुद्र मंथन की कथा से अनेक परम्पराएं निकलती हैं। कई बार तो ऐसा लगता है कि सबसे अधिक परम्पराओं का सृजन इस कथा ने ही किया है, शिव के जलाभिषेक की परम्परा, कुंभ स्नान की परम्परा हो, सूर्यग्रहण-चंद्रग्रहण से सम्बंधित परम्पराएं हों, नाग-पूजन की परम्परा हो, कामधेनु के पूजन की बात हो या लक्ष्मी पूजन की, सबके केन्द्र में समुद्र मंथन है। इससे भी अधिक आश्चर्य का विषय यह है कि ये परम्पराएं अब भी जीवंत बनी हुई हैं, भारतीय संस्कृति के कुछ निश्चित संदेशों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी सम्प्रेषित कर रही हैं। आखिर समुद्र मंथन की कथा भारतीय संस्कृति के मूलभूत आदर्शों

समुद्र मंथन की कथा परम्पराओं के चहुंओर बढ़ने के इस सामर्थ्य का उदाहरण है। एक ऐसी कथा जिसके केन्द्र में समुद्र है, लेकिन उसकी उपस्थिति और प्रभाव अखिल भारतीय है...

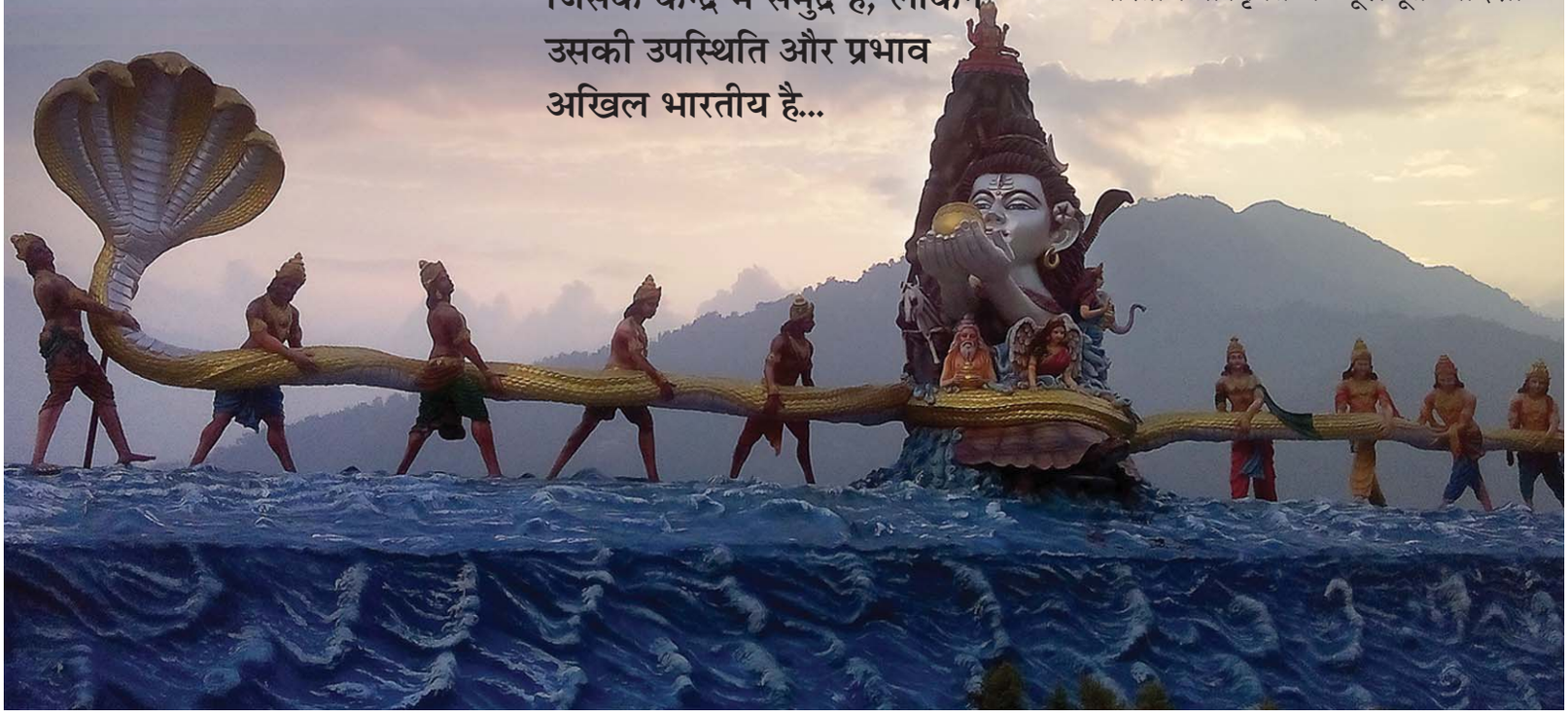

की अभिव्यक्ति की महाकथा क्यों बन गई है? मंथन की इस कथा ने अपने भीतर कौन से ऐसे संदेश संजोए हुए हैं? सबसे बड़ी बात यह कि वर्तमान परिदृश्य में इस कथा में निहित संदेशों की कोई प्रासंगिकता बची भी है कि नहीं?

इस कथा के केन्द्र में मंथन है। मंथन ही इस कथा का सबसे बड़ा मूल्य भी है। समुद्र-मंथन की योजना देवों के पराजित होने के बाद बनाई जाती है और देवों को पराजित करने वाले असुरों को सहभागी बनाकर बनाई जाती है। क्यों? इसलिए नहीं कि असुरों का मन-परिवर्तन हो गया था, बल्कि इसलिए कि उनकी शक्ति को नकारकर, उन्हें सहभागी बनाए बिना समुद्र मंथन नहीं किया जा सकता था। असुरों की तामसी वृत्ति के बावजूद, उनसे पराजित होने के बावजूद देवताओं ने असुरों से समुद्र-मंथन में सहभागी होने का निवेदन किया तो इसके कारण असुरों के पास शक्ति का होना था। देवता अक्षम थे और अकेले अपने दम पर कार्य नहीं कर सकते थे।

यह कहानी बताती है कि मंथन एक बहुआयामी और जटिल प्रक्रिया है। इतनी जटिल की कई बार विरोधाभासी प्रतीत होती है। लेकिन जो सत्य के लिए, धर्म के लिए विरोधाभासों को साध सके, विरोधियों का साथ ले सके, वही मंथन कर पाने में सक्षम होता है...

यह कहानी बताती है कि मंथन एक बहुआयामी और जटिल प्रक्रिया है। इतनी जटिल की कई बार विरोधाभासी प्रतीत होती है। लेकिन जो सत्य के लिए, धर्म के लिए विरोधाभासों को साध सके, विरोधियों का साथ ले सके, वही मंथन कर पाने में सक्षम होता है। मंथन शिव आदर्शों को स्थापित करने के लिए किया जाता है और शक्ति के सभी केन्द्रों को सहभागी बनाकर किया जाता है। वृहद् लक्ष्य के लिए अपने अहंकार को दरकिनार करना, शक्ति-केन्द्रों का सम्मान करना, उनसे संवाद करना और

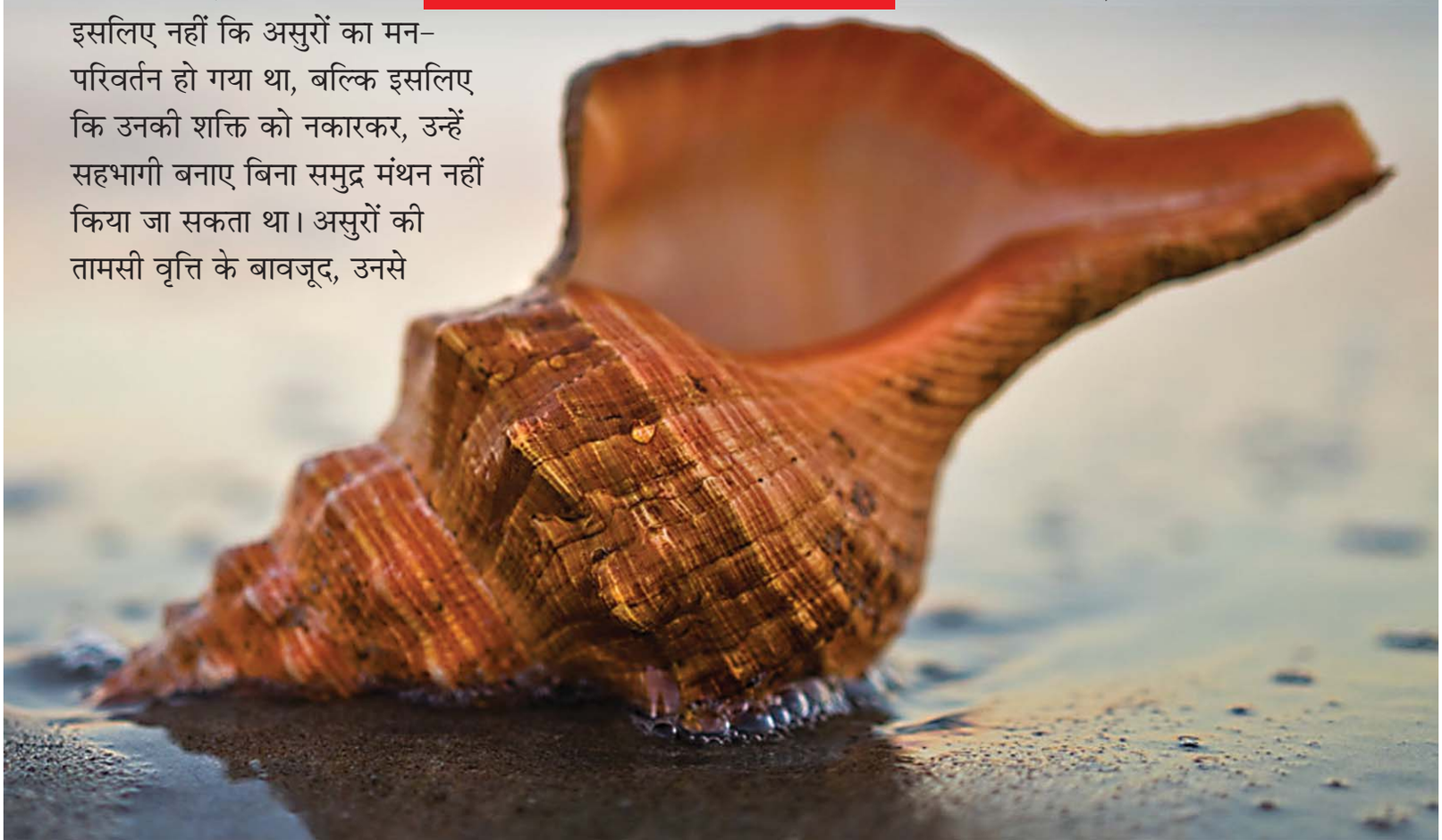

सहभागी बनाना यही मंथन है। संवाद रचने या सहभागिता सुनिश्चित करने का आशय नहीं होता, यदि सजगता छोड़ दी जाए। लक्ष्य और शत्रु के प्रति सजगता मंथन की पूर्व शर्त है। समुद्र-मंथन में भी यह सजगता दिखती है। अमृत को लेकर मनमोहिनी रूप धारण करने का प्रकरण यह साबित करता है कि देवता अपने लक्ष्य को लेकर सजग हैं। मंथन भविष्य के अनिश्चय को स्वीकार करने का साहस है।

संघर्ष-समाधान की सनातन परम्परा : अपने-अपने हिस्से के सच को अंतिम सच मान लेना बहुत स्वाभाविक है। यदि टुकड़ों में बंटे सच एक-दूसरे से संवाद न करें तो वृहद्तर सच अपरिचित रह जाता है, बड़ी संभावनाएं आकार नहीं ले पातीं। यह स्थिति ही अतिवादिता को जन्म देती है। अपनी सीमाओं का भान न रहने पर सच का हर टुकड़ा हथियार उठाकर दूसरे टुकड़े के खिलाफ जिहाद छेड़ देने का खतरा भी बना ही रहता है। सीमित सच यदि एक-दूसरे के साथ संवाद न करें, स्वाभाविक वृहद्तर सच से न जुड़ें तो अतिवादी होने की संभावनाओं का पैदा होना भी उतना ही स्वाभाविक है।

संवाद की परिधि की अंतिम सीमा पर संघर्ष के लिए भी स्थान उपलब्ध है। तत्व और विचार के संरक्षण और संवर्द्धन का माध्यम जीवन को बनाया गया है और इस प्रक्रिया को परम्परा का नाम दिया गया।

कुंभ संघर्ष-समाधान की सनातन परम्परा है और संघर्षों के समाधान की संभावनाएं अब भी इसमें बची हुई हैं। अपने-अपने हिस्से के सच को अंतिम सच मान लेना बहुत स्वाभाविक है। यदि टुकड़ों में बंटे सच एक दूसरे से संवाद न करें, तो वृहत्तर सच अपरिचित रह जाता है, बड़ी संभावनाएं

वृहद् लक्ष्य के लिए अपने अहंकार को दरकिनार करना, हुए शक्ति-केन्द्रों का सम्मान करना, उनसे संवाद करना और सहभागी बनाना यही मंथन है। संवाद रचने या सहभागिता सुनिश्चित करने का आशय नहीं होता सजगता छोड़ दी जाए। लक्ष्य और शत्रु के प्रति सजगता मंथन की पूर्व शर्त है। समुद्र-मंथन में भी यह सजगता दिखती है...

आकार नहीं ले पातीं। यह स्थिति ही अतिवादिता को जन्म देती है। अपनी सीमाओं का भान न रहने पर सच का हर टुकड़ा, दूसरे के खिलाफ जिहाद छेड़ देने पर आमादा हो जाए तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

अतिवादिता और संवादहीनता के वर्तमान दौर में कुंभ जैसे आयोजनों के मूलभाव को पुनरूज्जीवित किया जाना बहुत आवश्यक हो जाता है क्योंकि कुंभ व्यवस्थागत घटकों के बीच संवाद का एक वृहद् पारंपरिक प्लेटफार्म रहा है।

भारतीय संस्कृति संवाद से ही सत्य के उपलब्ध होने की बात कहती है। आप अध्यात्म के सूत्रों को पहचान करना चाहते हैं अथवा एक बेहतर व्यवस्था का निर्माण करना चाहते हैं, इसके लिए संवाद से बढ़कर कोई मानवीय और समग्र तरीका नहीं हो सकता।

संवाद की अवधारणा के आधार पर ही लोकतांत्रिक मूल्य पनपते हैं और सहिष्णु लोकमानस भी बनता है। किसी भी समस्या से जुड़े सभी पक्षों की पहचान और समाधान के लिए अधिकतम् सुझाव, संवाद की प्रक्रिया के द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं। संवाद की अतिशय महत्ता को ध्यान में रखकर ही शायद इसे धार्मिक पवित्रता की परिधि में प्रस्तुत किया जाता है। किसी के मत को खत्म करने के लिए शस्त्र उठाने की परंपरा हमारे यहां कभी भी नहीं रही। कुंभ, संवाद की इस परम्परा का सांस्थानिक स्वरूप है।

अमृत और अमरता का भी कुंभ से गहरा संबंध है। साधारणतया अमृत से एक ऐसे पदार्थ का आशय निकाला जाता है, जिसको ग्रहण करने के बाद हम कालवाह्य हो जाते हैं, कालातीत हो जाते हैं, काल के गुणधर्म से परे हो जाते हैं। अस्तित्व का विस्तार त्रिकाल में हो जाता है। लेकिन यह अमृत और अमरत्व की बहुत रूढ़ व्याख्या है..

अमृत और अमरता का भी कुंभ से गहरा संबंध है। साधारणतया अमृत से एक ऐसे पदार्थ का आशय निकाला जाता है, जिसको ग्रहण करने के बाद हम कालवाह्य हो जाते हैं, कालातीत हो जाते हैं, काल के गुणधर्म से परे हो जाते हैं। अस्तित्व का विस्तार त्रिकाल में हो जाता है। लेकिन यह अमृत और अमरत्व की बहुत रूढ़ व्याख्या है। रूपांतरण की प्रक्रिया के जरिए अपने अस्तित्व को बनाए रखना भी एक प्रकार का अमरत्व है।

भारतीय संस्कृति का अमरत्व कुछ इसी प्रकार का है। सामयिक परिवर्तनों को आत्मसात करने की प्रक्रिया में भारतीय संस्कृति का कलेवर बदल जाता है, लेकिन उसके मूलाधार नहीं बदलते। वह नितनवीन होने के साथ चिरपुरातन भी बनी रहती है। नितनवीन और चिरपुरातन के बीच संतुलन बिंदुओं की खोज और उनको साधने की प्रक्रिया में कुंभ जैसे आयोजनों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। आज जब हम परिवर्तनों के अंधड़ में जी रहे हैं, तब इस संतुलन के नवीन सूत्रों की खोज अपेक्षाकृत अधिक आवश्यक हो गई है। यदि हम कुंभ को व्यवस्थागत संवाद के प्लेटफार्म के मूलस्वरूप में स्थापित करने में सफल हो जाते हैं तो निश्चित रूप से संतुलन के नवीन सूत्रों की खोज भी कर लेंगे। ऐसा करना अपनी सांस्कृतिक धारा को अक्षय बनाए रखने के लिए जरूरी है। कुंभ जैसे वृहत्तर आयोजन के जरिए मंथन के मूल्य और संवाद की संस्कृति को पुनर्स्थापित किया जा सकता है। यदि ऐसा हो सके तो हम निश्चित रूप से सनातन को पोषित करने की स्थिति में होंगे क्योंकि सनातन को अमरता की बूंदे मंथन के मूल्य और संवाद की संस्कृति से ही मिलती रही हैं।

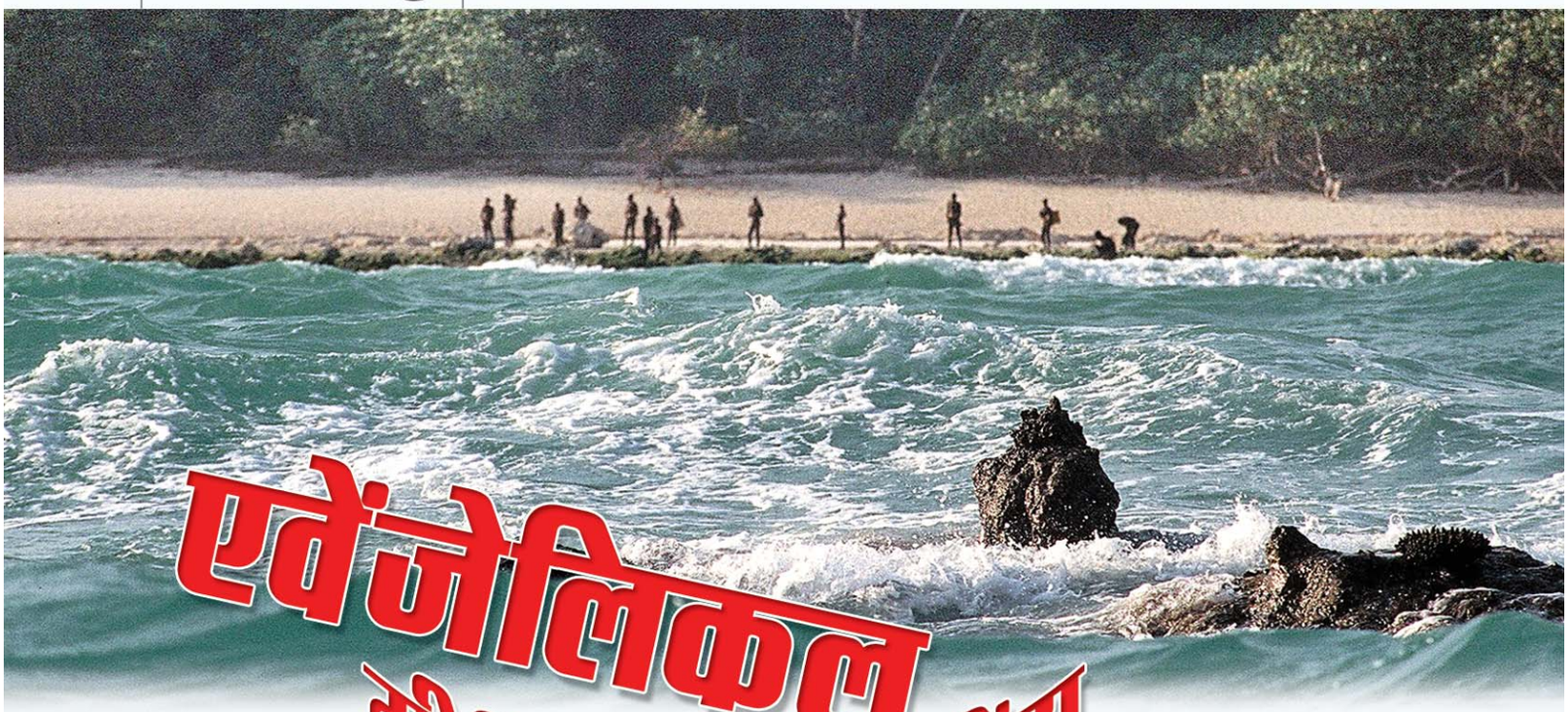

एवंजेलिकल मीडिया का एजेंडा

❐ डॉ. समन्वय नंद

अंडमान के बाहरी लोगों के लिए प्रतिबंधित सेंटिनल द्वीप में जॉन एलेन चाउ नामक एक अमेरिकी ईसाई एक्टिविस्ट का गैर-कानूनी तरीके से जाना और वहां स्थानीय लोगों द्वारा हत्या का शिकार होने का मामला चर्चा में रहा। जॉन एलेन चाउ की स्वयं की डायरी व उसके द्वारा भेजे गये संदेशों से पता चलता है कि वह सेंटिनली द्वीप को शैतान का अंतिम किला मानता था तथा उसे यीशू का राज्य (किंगडम ऑफ जीसस) बनाने के लिए गया था। चाउ ने हर प्रकार के गैर-कानूनी कार्य किए थे। वह ईसाई मिशनरी के तौर पर कार्य करने के लिए आया था, लेकिन उसने यह सब छुपाते हुए पर्यटक वीजा लिया था। प्रतिबंधित इलाके में वह गैर-कानूनी तरीके से गया था तथा हजारों सालों से वहां रह रहे लोगों को उनकी जड़ों से काटकर उनके गले में सलीव डालने के उद्देश्य से गया था। इस लेख में इस घटना को लेकर मीडिया की भूमिका का विश्लेषण करते हैं।

यह मामला सामने आने के बाद विभिन्न समाचार पत्रों में इस संबंध में रिपोर्टें प्रकाशित हुईं। तथाकथित मेन स्ट्रीम मीडिया में प्रकाशित रिपोर्टें तथा उनके शीर्षकों का उल्लेख किया जाना यहां जरूरी है। अंग्रेजी समाचार-पत्र टाइम्स ऑफ इंडिया में चाउ की मौत के बाद जो खबर प्रकाशित हुई, उसका शीर्षक था, 'बाइबिल सेव्ड हिम फ्रॉम ऐन ऐरो, ही फेल टू ऐन अदर।' अर्थात् स्थानीय जनजातीय लोगों ने चाउ के प्रति जो तीर मारा था, बाइबिल ने उससे चाउ की रक्षा कर दी, लेकिन बाद के हमले में वह मारा गया। इसी तरह कोलकाता से प्रकाशित टेलीग्राफ अखबार का शीर्षक था, 'हाऊ बाइबिल सेव्ड चाउ फ्रॉम फर्स्ट ऐरो ब्रिट्ज।'

उपरोक्त दोनों खबरों के शीर्षक से स्पष्ट है कि भारतीय कानून की धज्जियां उड़ाते हुए अपराध करने वाले व्यक्ति को लेकर क्रिश्चियनिटी का सुनियोजित ढंग से महिमामंडन किया गया है। खबर इस ढंग से लिखी गई है कि जैसे पत्रकार इस घटना के प्रत्यक्षदर्शी थे। उनके सामने ही सेंटिनली जनजाति के लोगों ने तीर से उसकी हत्या की तथा बाइबिल ने उसे पहले वार से बचाया। इस घटना के काफी दिनों बाद भी चाउ का शव नहीं मिल पाया है। इससे वहां की स्थिति के बारे में अंदाजा लगाया जा

TIMES NATION

Bible saved Chau from one arrow, he fell to another in bid to meet tribe

US Man Went To North Sentinel To Establish 'Kingdom Of Jesus'

TIMES NEWS NETWORK

Chennai: John Allen Chau, the 27-year-old US national who was killed on North Sentinel island of the Andamans, allegedly by its reclusive inhabitants, had gone there as a missionary to "establish the kingdom of Jesus on the island", his diaries reveal. He spent 48 hours around the island and survived an arrow shot by a Sentinelese boy — it struck the Bible he was clutching to his chest — before he fell to another, on November 17.

In the bunch of notes that he left behind in a kayak that served as his "base camp" near a dead coral, some 400 yards off the island's shore, Chau chronicled an adventure that included strolls on the North Sentinel beach and efforts to get friendly with the violent tribe by offering them gifts. "Do not blame the natives if I am killed," he scribbled on one of the 13 pages recovered from the kayak. The notes make it clear that Chau was aware of the dangers of not just being killed by the Sentinelese but also of being caught by the Indian authorities for venturing into the restricted area without permission. "God sheltered me against the Coast Guard and the Navy,"

he wrote. "His handwriting was bad, he wrote in unconnected sentences," Andaman and Nicobar DGP Dependen Pathak said. "It was a misplaced adventure. He cannot be called a preacher, but his diary indicates that he was a believer in Christianity."

The notes make some rare observations on the Sentinelese, who violently reject any contact with the outside world and are protected by Indian law. Chau observed there could be about 250 inhabitants on the island. "Each hut has at least 10 inmates, including juveniles," he wrote. The tribe's language, he noted, has a lot of high-pitched sounds like "ba", "pa", "la" and "sa". On their gestures, he wrote that opened arms indicated being unarmed and friendly, pointing a hand or finger showed location, and bow and arrow in hand meant they are "ready to shoot you". On one of his strolls on the island beach, Chau was confronted by a couple of tribesmen, armed with bow and arrow and shouting. Once a Sentinelese boy shot an arrow at him, but it hit Chau's Bible. Chau described his surroundings: "Beautiful cove, mostly dead coral, but clear sea. Sand is white, but coarse."

American defied 3-tier regime, caution to reach the island

Bharti.Jain@timesgroup.com

New Delhi: Preliminary investigations into the alleged killing of American citizen John Allen Chau by members of the protected Sentinelese tribe in Andamans' North Sentinel Island, indicate that he was a daring adventurist who bypassed caution as well as a three-layer restrictive regime meant to protect the island's rare, indigenous tribes and forests.

According to home ministry sources, there is no evidence so far to substantiate the charge that he was visiting the protected island — which is out-of-bounds for both Indians and foreigners unless they get mandatory approvals under the Protection of Aboriginal Tribe (Regulation) and Indian Forest Act — on an evangelical mission. "His belongings from the boat he had travelled in, the people he was associated with and his history of travels show he had an interest in adventure and water sports. While probe is on to establish the motive

John Allen Chau

with which he trespassed into North Sentinel Island, no evangelical angle has come to light so far," said an officer.

Interestingly, Chau had not informed the local FRRO, either himself or through the hotel/lodge where he was putting up, of his stay in Andamans, as required of foreign visitors.

"He did not intimate the FRRO and also entered the island without clearances mandated by the Protection of Aboriginal Tribes Regulation and Indian Forest Act," said an officer. North Sentinel Island is one of the 29 islands where the restricted area permit (RAP) regime was relaxed in June 2018 "in the interest of promoting tourism and overall development of the A&N Islands".

'May take some days to recover American's body'

सेंटिनल द्वीप के 30-40 जनजातीय लोगों को ये ईसाई मिशनरी छोड़ नहीं पा रहे हैं, बल्कि उन्हें भी मतांतरित करने पर आमादा हैं। ऐसी स्थिति में करोड़ों गैर-ईसाइयों को वे कैसे बिना मतांतरित किये रह सकेंगे, यह प्रश्न सामने आता है...

सकता है। ऐसी स्थिति में टाइम्स ऑफ इंडिया व टेलीग्राफ में प्रकाशित रिपोर्ट के शीर्षक काफी कुछ स्पष्ट करते हैं। तथाकथित मुख्यधारा का मीडिया मतांतरण के काम में लगे एवेंजेलिस्टों के हाथों का खिलौना बन गया है और उस आधार पर खबरें प्रकाशित कर रहा है। कानून का उल्लंघन करने वाली घटना को भी अत्यंत शातिराना तरीके से मतांतरण के लिए सहायक होने जैसा उल्लेख कर प्रकाशित किया गया है।

इसी तरह ब्रिटेन से प्रकाशित दि टाइम्स ने इस संबंधी रिपोर्ट का शीर्षक रखा, 'इफ आई एम शॉट बाय ऐन ऐरो, देन सो बी इट, रोट मिशनरी जॉन चाउ बिफोर डेथ।' अर्थात् मिशनरी चाउ ने मरने से पहले लिखा यदि मुझे तीर से मारा जाए, तो उन्हें मारने दो। इसी तरह फॉक्स न्यूज ने भी लिखा, 'अमेरिकन मिशनरी रोट, गॉड, आई डोंट वांट टू डाय, विफोर वीइंग किल्ड।' अर्थात् मरने से पहले अमेरिकी मिशनरी ने लिखा गॉड, मैं मरना नहीं चाहता।

उपरोक्त मीडिया रपटों से स्पष्ट है कि इस घटना में तथ्य व सत्य को छोड़कर भारतीय कानून का खुला उल्लंघन करने वाले व्यक्ति का एक बलिदान देने वाले योद्धा की छवि बनाने का प्रयास इस तथाकथित मुख्यधारा के मीडिया ने किया है। मतांतरण की चर्च की रणनीति का समर्थन करने के लिए तथाकथित मुख्यधारा के मीडिया ने अब यह रास्ता निकाला है। मीडिया का कार्य तर्कशक्ति के विकास की प्रक्रिया में सहायक होना है, लेकिन इस मामले में मीडिया ने इसके उलट कार्य किया है।

सेंटिनल द्वीप के 30-40 जनजातीय लोगों को ये ईसाई मिशनरी छोड़ नहीं पा रहे हैं, बल्कि उन्हें भी मतांतरित करने पर आमादा हैं। ऐसी स्थिति में करोड़ों गैर-ईसाइयों को वे कैसे बिना मतांतरित किये रह सकेंगे, यह प्रश्न सामने आता है। मीडिया का काम विश्व में विविधता को बनाये रखना, लोगों के बीच तर्कशक्ति विकसित करना है, लेकिन मीडिया इस घटना में चर्च के गोरखधंधे में शामिल होकर विश्व की विविधता को समाप्त करने के प्रयास में सहभागी होता प्रतीत हो रहा है।

एवेंजेलिकल मीडिया की भूमिका का आम मीडिया के संबंध में उल्लेख करने के बाद अब अमेरिकी व विश्व के अन्य देशों की एवेंजेलिकल (मतांतरण के काम में लगे) मीडिया

द्वारा इस संबंध में प्रकाशित रिपोर्टों पर नजर डालना जरूरी होगा। एवेंजेलिकल मीडिया ने जॉन चाउ को शहीद बताते हुए उसके महिमामंडन का कार्य शुरू कर दिया है।

सभी प्रकार के कानूनों को तोड़कर अत्यंत संवेदनशील व लुप्तप्राय: होने के कगार पर खड़ी एक जनजाति को मतांतरित करने का प्रयास करने वाले व्यक्ति को एवेंजेलिकल मीडिया ने महान बताकर रिपोर्टें प्रकाशित की हैं। एवेंजेलिकल मीडिया की बात तो छोड़िए, खुद के मुख्यधारा का मीडिया होने का दावा करने वाले सीएनएन ने भी चाउ को शहीद बताया है। सीएनएन ने अपनी रिपोर्ट में चाउ के दोस्तों को उद्धृत कर कहा है कि चाउ यीशू को अत्यंत प्रेम करता था और वह शहीद हो गया। क्रिश्चियनिटी टुडे ने इस संबंध में एक विस्तृत रिपोर्ट प्रकाशित की है। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि जॉन चाउ केवल शहीद नहीं, बल्कि वह उच्च दर्जे का शहीद हैं। इस रिपोर्ट में चाउ को इक्वेडर में जनजाति वर्ग के लोगों को मतांतरित करने का प्रयास कर मौत का शिकार होने वाले जिम इलियट के साथ तुलना की गई है। इस रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि जॉन चाउ की शहादत व्यर्थ नहीं जाएगी। ऑल नेशन के नाम से एक संस्था काम करती है, जो पूरे विश्व में मतांतरण को बढ़ावा देने वाली संस्था है। इस रिपोर्ट में ऑल नेशन संस्था के प्रमुख को उद्धृत करके कहा गया कि जॉन चाउ यीशू का संवेदनशील दूत था। सेंटिनल द्वीप में यीशू का संदेश लेकर जाने से पहले वह इराक, कुर्दिस्तान व दक्षिण अफ्रीका गए थे, लेकिन सेंटिनल द्वीप से वह नहीं लौट सके।

यह पूरे विश्व में मतांतरण को बढ़ावा देने वाली संस्था है । इस रिपोर्ट में ऑल नेशन संस्था के प्रमुख को उद्धृत कर कहा गया है कि जॉन चाउ यीशू का संवेदनशील दूत था। सेंटिनल द्वीप में यीशू का संदेश लेकर जाने से पहले वह इराक, कुर्दिस्तान व दक्षिण अफ्रीका गया था। लेकिन सेंटिनल द्वीप से वह नहीं लौटा...

दि इंटरनेशनल क्रिश्चियन कंसर्न ने अपनी पत्रिका में जॉन चाउ को शहीद बताते हुए कहा है कि भारत में ईसाइयों के प्रति उत्पीड़न बढ़ता जा रहा है। रिपोर्ट में इस घटना की तीखी निंदा करते हुए कहा गया है कि भारत में विदेशी ईसाई मिशनरियों के प्रति हमलों का लंबा इतिहास रहा है। हर घंटे भारत में ईसाई मिशनरियों का उत्पीड़न हो रहा है। इन एवेंजेलिकल मीडिया की रिपोर्टों में ऐसे व्यक्ति का महिमामंडन किया गया है, जिसने भारत के कानून की धज्जियां उड़ाई हैं तथा लुप्तप्राय: जनजाति की संस्कृति को समाप्त करने का प्रयास किया है। इतना ही नहीं, इसके बहाने भारत को भी कठघरे में खड़ा करने का प्रयास किया गया है।

ईसाई मिशनरी संस्थाओं द्वारा संचालित एवेंजेलिकल मीडिया ने चाउ को शहीद बताकर महिमामंडन करने के साथ-साथ भारत को सवालों के घेरे में खड़ा कर मतांतरण के लिए अवसर का सृजन करने का कुत्सित प्रयास किया, इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है। लेकिन अपने आप को मुख्यधारा का मीडिया बताने वाला यह समूह सम्बंधित मुद्दे पर तथ्यों के आधार पर नहीं, बल्कि एवेंजेलिकल मीडिया के हाथों का खिलौना बनकर मतांतरण के उनके उद्देश्य के करीब ले जाने का कार्य कर रहा है। यह गहन चिंता का विषय है, इसलिए इस तथाकथित मुख्यधारा के मीडिया के वास्तविक मंसूबों से रू-ब-रू होना जरूरी है ।

- लेखक, ओड़िशा के वरिष्ठ पत्रकार और चर्च-नक्सल गठजोड़ के अध्येता हैं।

कला और कुंभ में संवाद का समय

❐ त्रिवेणी प्रसाद तिवारी

कलाएं मानव मन की वृत्तियों का परिष्कार करती हैं। कला केवल रंग या मिट्टी ही नहीं होती, बल्कि हाथों से कुछ बनाना या विचार को सम्यक् रूप से प्रकट करना कला के रूपों में आता है। भारतीय मानस में प्राचीन काल से केवल चित्रकारी या मूर्तिनिर्माण ही कला की पहचान नहीं रही, बल्कि अन्य किसी भी विधा में पटु होना, प्रवीण होना कला की ही संज्ञा मानी जाती थी। आजकल अंग्रेजी चलन में जिस 'स्मार्टनेस' या 'शार्पनेस' कहकर भौंवें चढ़ाकर 'वॉव' किया जाता है, इस कवायद को भी हम कला कह सकते हैं। यदि कोई बच्चा बड़ी सफाई से दूसरे बच्चे के खिलौने को अपना बताने लगता है तो लोग हंसकर कहते हैं ये तो बड़ा कलाकार है। खाट में सुतली की विशेष तरीके से की गई बुनाई को देखकर लोग कह उठते हैं, वाह! क्या कलाकारी है! किसी भी गढ़ाई-बुनाई या रचने में उपयोगिता के कारण उसका प्रभाव कम या ज्यादा हो सकता है, परंतु बनाने के आनन्द में कोई असर नहीं पड़ता। रचने की संवेदना और उसकी संवाद प्रक्रिया कृति की महत्ता स्थापित करती है। कृतियों में उसकी परंपराएं देश, काल और जीवन का स्पंदन होना चाहिए। जहां जीवन है, वहां संवाद है। संवाद होता है, तो नया परिवेश आकार लेता है। इस परिवेश को माध्यमों में पुनर्रचित करना कला बन जाती है। जीवन व्यापक अर्थों में परंपराओं में ढलता रहता है धर्म के अवयवों को लेकर। विशाल धर्मप्राण समूह का जनसंवाद किसी कुंभ में पूरा होता है। व्यापक तौर पर यह समष्टि बन जाता है और प्रति व्यक्ति के लिए परंपरा से एकालाप।

भारतीय कलादर्शन के संबंध में पूर्व में जितने भी शिल्प-शास्त्रीय ग्रंथ मिलते हैं, उनके अनुशीलन से ज्ञात होता है कि हर तरह की

कार्य-कुशलता 'कला' है। विशिष्ट कुशलताओं में चित्रकला (आलेख्य) को सर्वोपरि माना गया। उसके अभ्यास, निरूपण की विधियां भी युगानुरूप अवधारणा से युक्त हैं। संस्कृत साहित्य में वर्णित पात्र, उनकी अभिरुचि, प्रदर्शन, प्रवृत्तियां वहीं हैं, जो कामसूत्र अथवा अन्य शिल्प-ग्रंथों में कला प्रमाण रूप में बताये गए हैं। भारतीय जीवन दर्शन अंकन की परंपरा टूटती है, इस्लामी आक्रमण से। सल्तनत काल में हमारी वैचारिक संस्थाएं (मंदिर, गुरुकुल) नष्ट किए जाते हैं, जो समाज और सत्ता दोनों के लिए नीति, कला, शास्त्रार्थ के केंद्र थे। मुगलों के समय पुनः कला को प्रश्रय देने की कोशिश होती है, तो कला अभिरुचि के नाम पर उनके पास क्या था? केवल हाशिये की फूल-पत्ती के अलंकरण। आपको ज्ञात होना चाहिए कि इस्लाम में चित्र बनाना हराम है, क्योंकि चित्र, अल्लाह की बराबरी मानी जाएगी जो कि गुस्ताखी होगी। तो इतनी मात्रा में मुगल पेंटिंग कैसे बनीं? मुगलकाल के बड़े सिद्धहस्त कलाकारों में नाम आता है- दसवंत, बसावन, मिस्कीन गोवर्धन, केसूदास, मनोहर, जगन्नाथ इत्यादि। बाद में चित्रकारों की परंपरा में सीखकर कुछ नाम आते हैं- मंसूर, मुशफिक, शीराजी।

मुगल चित्रों में हाशिए और उसके सजावटी अलंकरण की खूबी भी ईरानी प्रभाव से निर्मित हुई मानी जाती है। केवल फूल-पत्ती वाली हाशिए की कला कितनी कमनीय हो सकती थी? तो अन्य किस्से-कहानियां भीरचे, जिनमें पंचतंत्र, महाभारत का फारसी अनुवाद भी था। दरबारी चित्र जरूर बने, परंतु धीरे-धीरे भारतीय लोक की भाव-धारा जो राधा-कृष्ण के प्रेम में बहती रही थी, चित्रांकन की मुख्यधारा में पुनः आ गयी। राजस्थानी चित्रकला (बूंदी, कोटा, किशनगढ़ शैली), पहाड़ी चित्रकला (कांगड़ा, बसोहली, मंडी, चंबा शैली) में

संस्कृत साहित्य में वर्णित पात्र, उनकी अभिरुचि, प्रदर्शन, प्रवृत्तियां वहीं हैं जो कामसूत्र अथवा अन्य शिल्प ग्रंथों में कला प्रमाण रूप में बताये गए हैं। भारतीय जीवन दर्शन अंकन की परंपरा टूटती है, इस्लामी आक्रमण से...

जीवन अपने विशिष्ट अंकन में शैलीबद्ध होकर नये कलेवर में दिखायी पड़ता है। भारतीय जीवन दर्शन अद्भुत है। यह अद्भुत दृष्टि दो महान चरित्रों में मिलती है, जो स्थूल रूप में जीवन धारण कर वास्तविक मनुज होने की पराकाष्ठा दिखायी। एक लोकोत्तर राम, दूजे कठोर नियमों का समयानुसार संधान करते श्रीकृष्ण। इनके आदर्शों के लंबे अंतराल के पश्चात् हमारे समाज में जो विकृतियां फैलीं, उनको पुनः शोधित कर नयी आधार-भूमि प्रदान करते हैं भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध।

आप देख सकते हैं कि कला में ज्यादातर प्रेम का ही अंकन हुआ राधा-कृष्ण को आलंबन बनाकर। संसार में किसी भी कला में संगीत को चित्रित नहीं किया गया है, परंतु राजस्थानी शैली में रागों पर आधारित 'रागमाला' बनायी गई। अद्भुत सम्मिलन है संगीत और कला का। विशेष मौसम, प्रहर में गाये जाने वाले रागों को प्रकृति के आलंबन से, रंगों के चयन, ब्रशों से महीन छाया पैदा कर चित्रित किया गया है। यह बताता है कि उस समय भी कलाकार केवल छवियों का चितेरा नहीं था, बल्कि नगर, पुर, लोक आदि में जो संगीत बह रहा था उससे कटा हुआ नहीं था।

'बारहमासा' जिसमें बारहों महीने की विशेषताओं से युक्त मौसमी एवं मानवी प्रवृत्तियों, जो कवियों के लिए चुनौतीपूर्ण थीं, उसे कलाकारों ने भी सुंदरतम् अंकित किया। परिवेश और उसका सहजीवन, उससे उपजी परंपराएं यह किसी समाज की अपनी स्वाभाविक गति का निर्माण करती हैं। यह स्वभाव ही जीवन बोध है, जो गुणों के रूप में सभ्य होने का अनिवार्य प्रमाण बन जाती है। समाज की स्वाभाविक गति पूरे साल भर चलते-चलते एक जगह ठहरती है वहीं कुछ भावमय वृत्तियां परंपराएं बन जाती हैं। ये आचारमय परंपराएं उत्सव का रूप ले लेती हैं। यही उत्सव तो कलाओं को जन्म देते हैं। उल्लासमय कोलाहल देते हैं, कोई धुन पैदा करते हैं। कलाएं समाज एवं व्यक्ति के बीच समय का संवाद करती हैं। इस महती संवादधारा का महत्वपूर्ण पड़ाव है- कुंभ। राग-विराग, प्राप्ति व परेशानी के चकरघिन्नी से निकलकर अमृतमयी गंगा रेती पर निवास व करोड़ों डुबकी एक साथ। एक जीवन से विरागी-संन्यासी, दूसरा 'गृह कारण नाना जंजाला' में गृहस्थ। दो महनीय वृत्ति एक साथ होते हैं त्रिवेणी पर। अद्भुत संयोग जो सनातन समाज ने तय किये हैं। हमारा धर्म मात्र कठोर नियमावलियों में ही नहीं है। यह तो 'मनाते चलो' की धारा में बहती हुई रूप बना लेता है। जिसमें साधु-संन्यासी, बाल-

असंख्य सिरों का धारा में डुबकी लगाना, जुड़ी हुई दसों उंगलियों से टपकती बूंदों में होठों से कल्याण की कामना प्रवाहित होती है। क्या यह कला का रूप नहीं है? देश के कोने-कोने से आया हर व्यक्ति जो श्वास-श्वास में मंगलमयी बुदबुदाहट लिए अजस्त्र स्त्रोतस्विनी को निहारता रहता है...

वृद्ध, छोटे-बड़े सभी की कामनाओं को साधे एक जगह खड़े हो, गंगा की अजस्त्र धारा में अपने-अपने कंठों से एक गीत गाना एक अद्भुत उत्सवी परंपरा को चलाता है, यही कुंभ है।

असंख्य सिरों का धारा में डुबकी लगाना, जुड़ी हुई दसों उंगलियों से टपकती बूंदों में होठों से कल्याण की कामना प्रवाहित होती है। क्या यह कला का रूप नहीं है? देश के कोने-कोने से आया हर व्यक्ति जो श्वास-श्वास में मंगलमयी बुदबुदाहट लिए अजस्त्र स्त्रोतस्विनी को निहारता रहता है...यह एक पटचित्र ही तो है जिसे किसी कलाकार ने कैनवस पर बनाया तो नहीं, लेकिन असंख्य चित्र हर क्षण घटित होते रहते हैं। वर्ष की इकाई में घटने वाला कुंभ जीवन को रच देता है, मांज देता है। परंतु इस संवादमय अनूठी घटना को कलाओं ने कितना रचा है? लोक ने तो बहुत रचा, गीतों में, मंगलकामनाओं में, मनौती में। हमारी चाक्षुष कलाएं थोड़ी कृपण रह गईं। आजादी के प्रयत्न के साथ ही कला में भी भारतीय स्वरूप की ओर हम बढ़े थे, लेकिन बीच में बाहरी लोगों के करतब देखने उनके बाजारों में घूम गये। लोककलाओं का बंटवारा करके उसे ग्रामीणों-अनपढ़ों और आदिवासियों के हुनर पे छोड़ दिया और हम हैट-बूट तान के 'मॉडल-स्टडी' करने लगे बंद कमरों में। करोड़ों मनों-हृदयों की इतनी बड़ी सहज आस्था, सहज सम्मिलन आज तक किसी चित्रकार-मूर्तिकार की कला साधना का विषय नहीं बना? आश्चर्य है। जीवन के सहज उच्छलन-स्पंदन का राग, रंगों में क्यों न ढला? जबकि हमने 'रागमाला' चित्रित किये हैं। रूप रचने वाली आंखों से इतना बड़ा जनसमूह आज भी ओझल क्यों है, जबकि बहुत से आधुनिक प्रसिद्ध कलाकारों ने 'मेडोना एंड चाइल्ड' को बड़े मन से रचा।

धर्म के स्वरूप का इतना बड़ा चिंतन-आयोजन-भाव ने आजादी पश्चात् नामी कला-जादूगरों को क्यों प्रभावित नहीं किया, जबकि वे ईसा मसीह के क्रॉस पर लटकाए जाने वाले चित्र बनाकर आंसुओं से भर गये। तथाकथित समकालीन

कलाकारों में आज भी भारतीय लोक स्पंदन की समझ का घोर अभाव है। अधिक हुआ तो शहरों की भीड़-भाड़, ट्रैफिक, मेट्रो या मकानों के डिब्बे ही रख रहे हैं...उलट-पलट रहे हैं...पेड़ों की तरफ भी मुड़े हैं परंतु नंदलाल बोस, रामकिंकर बैज, केजी सुब्रह्मण्यम जैसी त्यागमयी साधना का अभाव है। उपरोक्त सवालों के घेरे में ऐसा नहीं है कि अन्य भारतीय विषय चित्रित ही नहीं किये गये, लेकिन ज्यादातर कलाकार या तो स्वकेंद्रित हो गये या पश्चिमी तकनीकों के मुरीद। वे शहरों तक सीमित रह गये। वे शहर जो खुद भी न्यूयार्क, लंदन और हांगकांग हो जाने का सपना देखते हैं। दृष्टि में लोक की समझ गांव नामक झोपड़ी या स्त्री के शरीर सौष्ठव तक ही सीमित रह गयी। लोक शहर का विपरीत होना ही नहीं है। भीड़भाड़ नैराश्य का ठीक उल्टा निर्णय एकाकी होना मात्र नहीं है। यह तो एक चेतन दृष्टि है जो उधार से नहीं मिलती। हिन्दी साहित्य की प्रगतिवादी धारा में व्यक्त-मिलों, ट्रेनों और ऑफिसों से निकलती समयबद्ध नौकरीपेशा भीड़ की नैराश्य मानसिकता का आरोप कुंभ पर भी मढ़ दिया गया भीड़ मानकर। जबकि कला तो दृष्टि की भाषा है। कलाकारों ने अपनी आंखों से लोकोत्सव नहीं देखा। उन्होंने समझा कला केवल कलाकार, कूंची और कैनवस में ही है जिसे वो अपनी व्यक्तिगत वैचारिकता से गढ़ता है। कलाकार भूल गया कि वह तो मात्र चितेरा है। उसे रचना है जो बाहर घटित हो रहा है, जो ध्वनिमय प्रकृति है, वह जो हर-हर करता बढ़ता समाज है। किंतु अफसोस, रेखाएं विचारों में फंस गयीं। रंग राजनीति का चेहरा बन गए और कलाकार करोड़ी क्रांति का दुलरूआ, तो नजर कहां से पैदा हो। जिस अगम्य को तत्व रूप में समझते-समझाते, चिंतन-विमर्श करते हुये कितने ही शास्त्र रचे गए, सनातन धारा बन गयी, उसको गढ़ते हुए कितने ही कलाकार पीढ़ी ने स्थूल माध्यमों में प्राण-छंद पैदा किए। क्या किसी ने यक्ष-यक्षिणियां देखे थे? कुबेर? या विद्याधर-विद्याधरी? क्या सारे देवी-देवताओं को सामने बिठाकर 'मॉडल-स्टडी' किया गया था? या मंदिर पहले कहीं देखे गये थे? नहीं। जब देखे नहीं गये थे तो स्वरूप कैसे बना? धर्मानुप्राणित लोक चेतना ने अनगढ़ रूप रचे थे, दीक्षित कलाकारों ने शास्त्रीय आधार प्रदान किया। सारे रूप-विधान, वास्तु, तत्व दर्शन के ही रूप निरूपण हैं।

अपने शास्त्रों के बोध का मानक स्वरूप निर्धारित किया गया बिना दूसरों से तुलना किये। किसी श्रेष्ठता बोध की स्थापना हेतु नहीं, अपितु जिस चिंतन बीज तक भारतीय मनीषा पहुंची थी उस परा को संवाद की लय देने के लिए पूर्व की कलाओं ने रूप संधान किया।

'लीयते परमानंदेययात्मा सा परा कला' आग्रह यही है कि प्राचीन का केवल गुणगान ही न हो, बल्कि उसकी रचना प्रक्रिया और विचारों को रूप में ढालने की सिद्ध तकनीक पर भी ध्यान हो। प्राचीनता मात्र संग्रहित ही न हो, अपितु उसका पुनर्संधान भी हो। दर्शन, विचारों को रूपायित करना बोरियत और पुरानेपन के एहसास से भर सकता है, इसलिए कला को विनोदपूर्ण एवं मनोरंजक होना आवश्यक है, अन्यथा कलाकार वैचारिकता से बोझिल हो जायेगा। इसके लिए लोकरंजक होना पड़ेगा। उन लोगों के बीच जाना होगा जो जीवन की तात्कालिक पूर्ति हेतु जरूरत भर की तकनीक स्वयं निर्माण कर लेता है। ये उसकी कलाकारी है, जिसे बेचा नहीं जाता, उपलब्ध कराया जाता है। जीवन की कम से कम सुविधाओं में रहकर प्राकृतिक नियति के स्वाध्याय से हमें लोक की चित्त, धारणा समझने में सहायता मिल सकती है। गैलरी कल्चर तो फिरनी है, जो ऊपर-नीचे फिराती रहेगी। करोड़ी होना माया है। 'माया महाठगिनी हम जानी!'

बिकाऊ संस्कृति में कला मात्र दिखाऊ हो जाती है, व्यक्तिगत बाजीगरी का रुतबा बन जाती है। व्यक्ति केवल अपने आप में संपूर्ण नहीं हो सकता, उसे समष्टि में घुलना होगा। जीवन व्यापक अर्थों में परंपराओं में ढलता रहता है, धर्म के अवयवों को लेकर। इन सबका मिलान है-कुंभ।

पूर्णता के घट में सब तिरोहित करना है। भागीरथी में डुबकी के बाद बरौनियों से झरती बूंदों के बीच खुलता संसार देखो। गहरे हरे रंग की ठहरी गति, बलुई धवलता का तेज बहाव, एकमेक होती हुयी कैनवस की सीमा के पार निकल गई है। हवाओं के अंतराल में केसरिया का तेज स्ट्रोक लगा है। असंख्य सिरों के परिप्रेक्ष्य में नाद की एक अमूर्त सी आकृति दिखायी देती है, परंतु पूरी तरह बन नहीं पाती। फिर कोशिश, रंग की धार, लेकिन छूट जाता है कुछ। इस क्रम में कितनी चीजें सृजित हो जाती हैं, फिर भी समग्र मूर्तिमान स्वरूप पूर्णत्व का, कुंभ का आना अभी बाकी है।

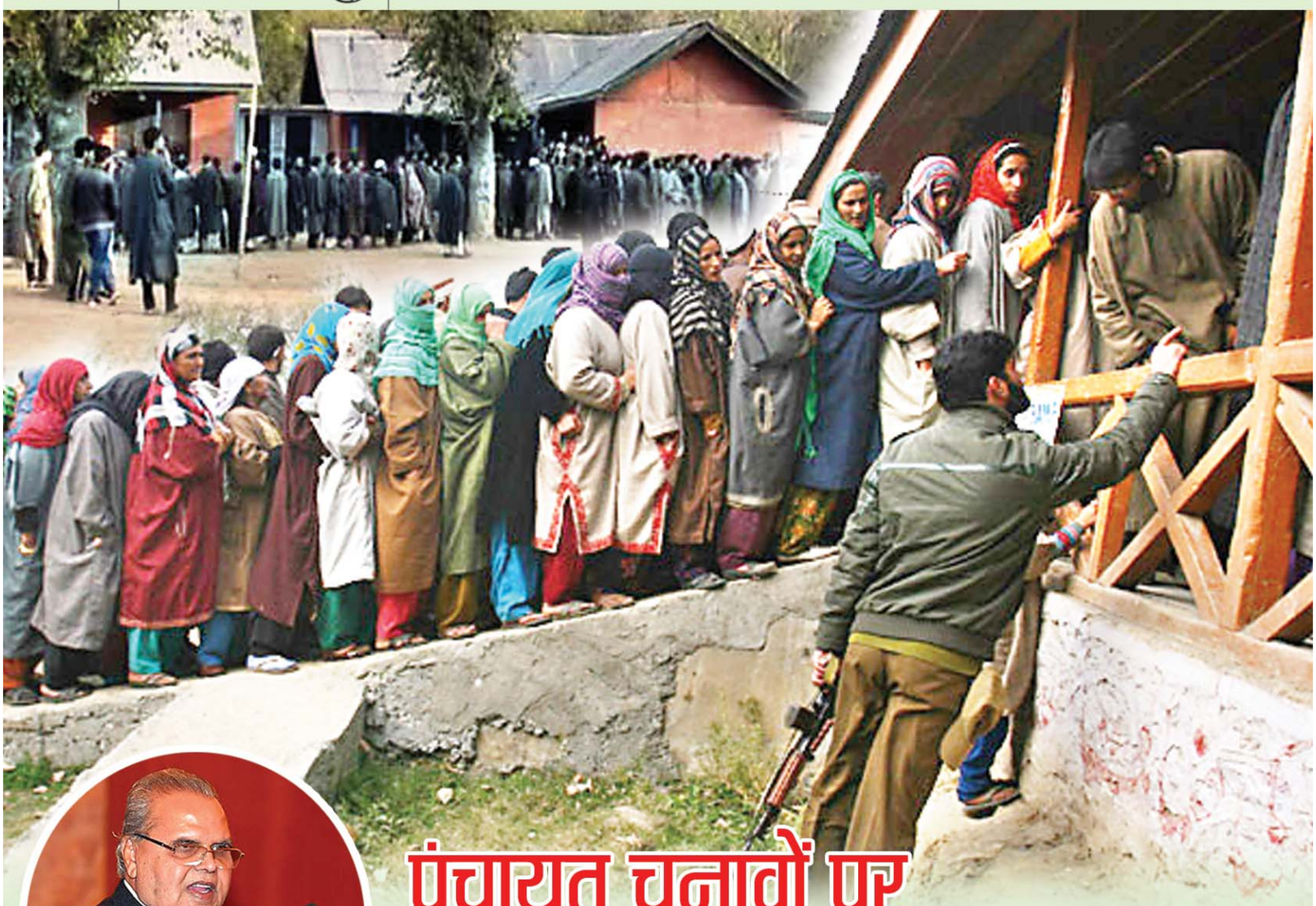

पंचायत चुनावों पर रणनीतिक चुप्पी

❒ चन्दन आनन्द

राजनीति मीडिया का प्राइम एजेंडा है। भारत में भी यदि मीडिया की बात की जाए तो यहां भी सबसे अधिक स्थान राजनीति और उससे संबंधित विषयों को ही मिलता है। इसमें भी यदि कहीं चुनाव हो रहे हों या चुनावों का दौर चल रहा हो, तो इससे अच्छा मुद्दा तो मीडिया के लिए अन्य कोई है ही नहीं। चुनावों की कवरेज के लिए तो किसी भी महत्वपूर्ण राष्ट्रीय या अंतराष्ट्रीय मुद्दे को ताक पर रख दिया जात है। राजनीति के बाद कुछ और विषय भी आते हैं, जिनसे संबंधित सूचनाओं एवं समाचारों के इंतजार में मीडिया हमेशा रहता है। मीडिया का ऐसा ही एक पसंदीदा विषय है जम्मू-कश्मीर।

जम्मू-कश्मीर से संबंधित किसी भी समाचार को मीडिया राष्ट्रीय विमर्श बनाने से पीछे नहीं हटता। चाहे मुद्दा राजनीतिक हो या गैर-राजनीतिक, यदि जम्मू-कश्मीर से संबंधित है तो मीडिया उसे किसी न किसी निष्कर्ष तक पहुंचाने के प्रयास में रहता है। हाल ही के दिनों में जम्मू-कश्मीर और राजनीति से संबंधित अनेक विषय मीडिया विमर्श का

जम्मू-कश्मीर से संबंधित किसी भी समाचार को मीडिया राष्ट्रीय विमर्श बनाने से पीछे नहीं हटता। चाहे मुद्दा राजनीतिक हो या गैर-राजनीतिक, यदि जम्मू-कश्मीर से संबंधित है तो मीडिया उसे किसी न किसी निष्कर्ष तक पहुंचाने के प्रयास में रहता है..

हिस्सा रहे। राजनीति की बात की जाए तो पांच राज्यों के विधानसभा चुनाव, जिसमें भी प्रमुखता से तीन पर ही ध्यान दिया गया। वहीं जम्मू-कश्मीर में सेना द्वारा आतंकियों के खात्मे के लिए चलाया जा रहा ऑपरेशन ऑलआउट, धुरविरोधी पार्टियां पीडीपी, नेशनल कॉन्फ्रेंस और कांग्रेस द्वारा राज्य में सरकार बनाने के प्रयास, राज्यपाल द्वारा विधानसभा को भंग करना और आतंकियों के बचाव में आने वाले पत्थरबाजों पर सुरक्षाबलों की कार्रवाई जैसे विषय ही मीडिया की नजरों में आ सके। इन सबके बीच, इसी दौरान एक ऐसा अद्भुत घटनाक्रम भी घट रहा था जो चुनाव, राजनीति और जम्मू-कश्मीर तीनों से संबंधित था, लेकिन न जाने किस योजनावश मीडिया के मुद्दों और चर्चाओं से गायब रहा। वह था पिछले दो महीनों में जम्मू-कश्मीर में हुए नगर पालिका और पंचायत चुनाव। राज्य में हुए ये चुनाव स्वयं ही एक नए विमर्श को जन्म देने वाले हैं, जो कि मीडिया जाने-अनजाने में देश को समझाने और बताने में विफल रहा।

राज्य में हुए ये चुनाव स्वयं ही एक नए विमर्श को जन्म देने वाले हैं, जो कि मीडिया जाने-अनजाने में देश को समझाने और बताने में विफल रहा। अब यह विफलता अज्ञानता के कारण रही या किसी सोची-समझी रणनीति के तहत इस पर विचार करना चाहिए...

अब यह विफलता अज्ञानता के कारण रही या किसी सोची-समझी रणनीति के तहत इस पर विचार करना चाहिए। क्योंकि यदि मीडिया इन चुनावों, उनके महत्व को चर्चा का विषय बना देता, तो आज तक जो भी विमर्श जम्मू-कश्मीर के नाम पर इन्होंने खड़े करने का सफल-असफल प्रयास किया था, वह ढह जाता। मीडिया भलिभांति जानता था कि यह चुनाव जम्मू-कश्मीर राज्य और देश के लिए कितने महत्वपूर्ण चुनाव हैं और इनका महत्व पांच राज्यों में हो रहे विधानसभा चुनावों से ज्यादा ही था।

राज्य में नगर पालिका के चुनाव 2005 और पंचायत के चुनाव 2011 के बाद अब हो रहे थे। उससे पहले भी राज्य में यह चुनाव दशकों बाद हुए थे। राज्य में स्थानीय चुनावों का न होना या उन्हें निरंतर टालना कोई इत्तेफाक नहीं, बल्कि सोची-समझी राजनीतिक साजिश रहा है। राज्य में दशकों से राज कर रहे राजनीतिक दल या परिवार ही इन चुनावों के पक्ष में नहीं रहे। वैसे तो देश भर की राजनीति में परिवारवाद के कई उदाहरण मिलते हैं, लेकिन जम्मू-कश्मीर में राजनीतिक सत्ता प्रारंभ से ही कुछ परिवारों के हाथों में ही रही है। इनमें राज्य के दो प्रमुख राजनीतिक दल आते हैं, पहला शेख मोहम्मद अब्दुल्लाह के परिवार की नेशनल कॉन्फ्रेंस और दूसरी मोहम्मद सईद के परिवार की पीडीपी। कांग्रेस का समर्थन पाकर दोनों परिवार की पार्टियां राज्य में सत्ता का सुख भोगती रहीं और अंततः सत्ता पाने के लिए मुफ्ती मोहम्मद सईद के परिवार की पीडीपी को भाजपा से भी गठबंधन करना पड़ा। हालांकि यह गठबंधन कई कारणों से लंबा नहीं चल सका, जिसमें से एक राज्य में स्थानीय चुनावों का न होना भी था।

इस एकाधिकार के कारण आम जनमानस की सत्ता और शासन में सहभागिता दूर-दूर तक कहीं नहीं थी। इन दोनों परिवारों को ही सर्वेसर्वा मानने की मानसिकता राज्य में विकसित की गई। यदि नगर पालिका या पंचायतें अस्तित्व में रहतीं तो सत्ता का विकेंद्रीकरण होता। विकास और कल्याण की योजनाओं के लिए केंद्र से मिले धन को स्थानीय समितियां, निकाय और पंचायतों को देना पड़ता। इससे न केवल शासन अच्छे से चलता, बल्कि आम जनमानस का इन परिवारों और राजनीतिक दलों को सर्वेसर्वा के रूप में स्वीकार करना मुश्किल हो जाता। इससे एक तरफ तो बिना हिसाब के मिले धन

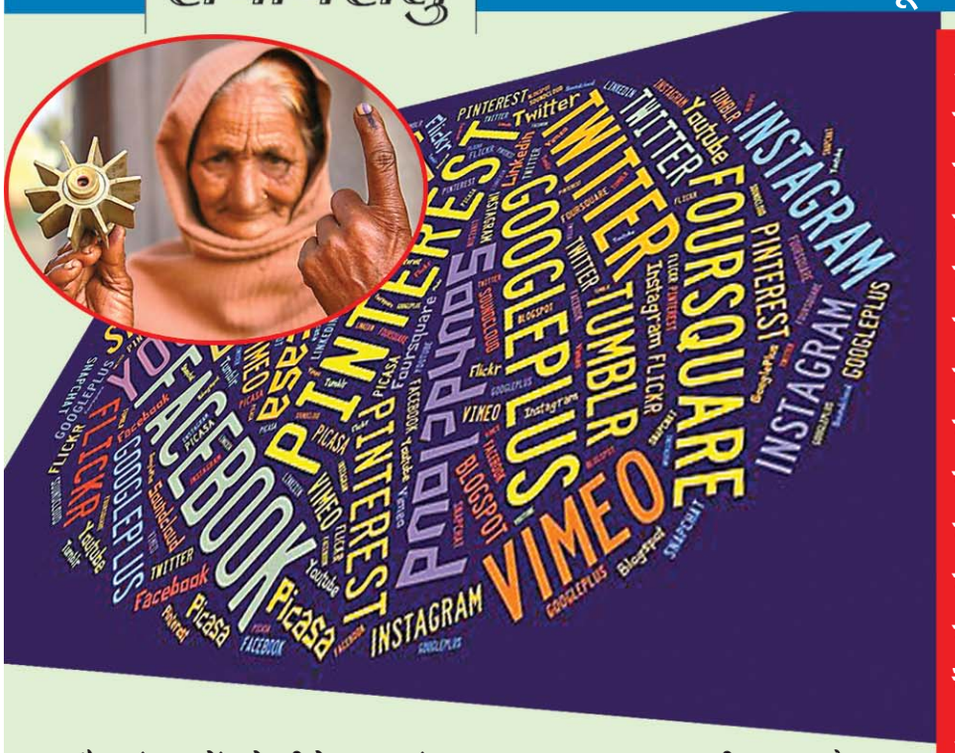

अब यदि हम जम्मू और लद्दाख से बाहर केवल कश्मीर की बात करें, तो वहां स्थानीय निकाय के न होने से आम कश्मीरी की हालत बद से बदतर है। आम कश्मीरी न केवल सत्ता से बहुत दूर है, बल्कि अपने आप को व्यवस्था और सत्ता से ही कटा हुआ महसूस करता है...

और संसाधनों को नीचे तक बांटना पड़ता और हर छोटी परेशानी के लिए आम जनमानस को इन परिवारों की ओर स्वामी की दृष्टि से नहीं देखना पड़ता। तो स्थानीय निकाय और पंचायत चुनाव न केवल जनता को सक्षम बनाते, बल्कि शासन और सत्ता का विकेंद्रीकरण कर इन परिवारों की शक्तियों को भी क्षीण करते। साथ ही भविष्य में राज्य के आम महिला और पुरुष से इनको चुनौती भी मिल सकती थी। इसलिए परिवारों की सत्ता बनाए रखने के लिए आवश्यक यही था कि सत्ता केवल अपने हाथों में ही रहे और आम आदमी इससे दूर ही रहे। स्थानीय निकाय एवं पंचायत चुनाव न केवल सत्ता का विकेंद्रीकरण करते, बल्कि आम जनमानस को भी सत्ता तक सीधा पहुंचाने का काम करते।

इसके अलावा एक और पक्ष जम्मू-कश्मीर की राजनीति और स्थानीय चुनावों के न होने देने से गहरा संबंध रखता है। जम्मू-कश्मीर राज्य के मूलत: तीन प्रमुख संभाग माने जाते हैं-लद्दाख, जम्मू और कश्मीर। इनमें से क्षेत्रफल में लद्दाख सबसे बड़ा है और जनसंख्या में जम्मू। लेकिन राज्य की विधानसभा में या सीधे तौर पर राज्य में राज कश्मीर से संबंधित दलों या कश्मीरी राजनेताओं का ही रहता है। जिससे जम्मू और लद्दाख संभाग की सत्ता में सहभागिता न के बराबर रहती है। स्थानीय निकाय और पंचायतें न होने की वजह से स्थिति लंबे समय से ऐसे ही बनी हुई थी और आगे भी ऐसे ही रहती। जम्मू और लद्दाख को सत्ता से दूर रखने का यह सुनियोजित राजनीतिक षड्यंत्र था।

अब यदि हम जम्मू और लद्दाख से बाहर केवल कश्मीर की बात करें, तो वहां स्थानीय निकाय और पंचायतों के न होने से आम कश्मीरी की हालत बद से बदतर है। आम कश्मीरी न केवल सत्ता से बहुत दूर है, बल्कि अपने आप को व्यवस्था और सत्ता से ही कटा हुआ महसूस करता है। जम्मू-कश्मीर की विधानसभा में जिस कश्मीरी बहुलता की बात हमने की, उसमें भी आम कश्मीरी प्रतिनिधि नहीं है। यदि हम केवल कश्मीर घाटी की जनसांख्यिकी की बात करें, तो वहां की जनसंख्या में पांच से दस प्रतिशत लोग ऐसे हैं, जो मूल रूप से कश्मीरी नहीं हैं। इनमें शेख, सईद, गिलानी आदि प्रमुख जातियां हैं। सदियों पूर्व उनके पूर्वज अरब, ईरान और मध्य एशिया से कश्मीर में आए और कश्मीर पर राज किया। तब से लेकर अब तक इन पांच-दस प्रतिशत बाहरी लोगों और स्थानीय कश्मीरियों में किसी न किसी रूप में संघर्ष चल रहा है। अब जिस कश्मीर बहुल विधानसभा की बात हम ऊपर कर रहे थे, उसमें 50-60 प्रतिशत ये लोग ही हैं। ये विदेशी आज भी आम कश्मीरी को अपने से छोटा ही मानते हैं और इन पर राज करना अपना एकाधिकार समझते हैं। इस स्थिति में यदि स्थानीय निकाय, समितियां और पंचायतें अस्तित्व में आती हैं, तो आम कश्मीरी जो आज तक राजनीतिक सत्ता के चलते इनके अधीन था, इनकी बराबरी तक न केवल पहुंच सकता है, बल्कि देर-सवेर इन्हें सत्ता से हटा इन पर राज भी कर सकता

है। सीधे शब्दों में कहें तो जम्मू-कश्मीर में न केवल राज्य से बाहर के लोगों के अधिकार समाप्त हो जाते हैं, बल्कि राज्य में रह रहे लोग भी जाने-अनजाने अपने राजनीतिक अधिकारों से वंचित रहे हैं। ऐसी स्थिति में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि जम्मू, कश्मीर और लद्दाख तीनों संभागों के लोग राज्य की सत्ता से बिल्कुल वंचित हैं।

वर्षों से चली आ रही इस व्यवस्था को कभी न कभी तो समाप्त होना ही था। आखिर कब तक आम जनता की उपेक्षा कर राज्य में शासन किया जा सकता था। भारत की जगह कोई अन्य देश होता तो ऐसी राजनीतिक तानाशाही में गृहयुद्ध जैसे हालात बनने में भी समय नहीं लगता, लेकिन भारत के मजबूत लोकतंत्र और उस पर विश्वास करने वाली जम्मू-कश्मीर की जनता ने अंतत: चुनौती दी। राज्य के राजनीतिक परिवारों के अस्तित्व और एकाधिकार को तोड़ने वाले इन चुनावों के पक्ष में तो यह प्रमुख पार्टियां कभी नहीं थीं, यह इस बार फिर पता चल गया। राज्यपाल द्वारा जैसे ही राज्य में स्थानीय निकाय और पंचायत चुनाव कराए जाने की बात कही गई, वैसे ही इन राजनीतिक दलों ने इसे अपने अस्तित्व का संकट मानते हुए इन चुनावों में ही भाग लेने से मना कर दिया और राज्य के तथाकथित विशेषाधिकार से छेड़छाड़ का बहाना बनाया। अब कोई पूछे कि राज्य के आम आदमी की सत्ता में सहभागिता होने से किसके विशेषाधिकारों का हनन होता है? इन राजनीतिक परिवारों के या राज्य का? समय आने पर इसका यथोचित उत्तर भी राज्य की जनता ने इन राजनीतिक परिवारों को दे दिया।

राज्य की जनता को अपने परिवार की जागीर मानने वाले इन राजनीतिक परिवारों को लगा कि हम इस राज्य की दो प्रमुख पार्टियां हैं, यदि हम ही चुनावों से मना कर देंगे तो राज्यपाल चुनाव कैसे कराएंगे? इसके बावजूद राज्यपाल सत्यपाल मलिक ने चुनाव कराने के संकल्प को वापस नहीं लिया। राज्यपाल कार्यालय की फैक्स मशीन बंद होने वाली खबर को प्रमुखता से दिखाने वाले मीडिया घरानों ने राज्यपाल की इस प्रशासनिक कुशलता और इसके सामरिक महत्व को बताने का बिल्कुल भी कष्ट नहीं उठाया। अंतत: राज्य में नगर पालिका के चुनाव अक्तूबर माह में चार चरणों में और पंचायत चुनाव नवंबर-दिसंबर में नौ चरणों में कराने का निर्णय लिया गया। राज्य के प्रमुख राजनीतिक दलों के चुनावों में भाग लेने से मना करने के बाद भी राज्यपाल के लिए चुनाव कराने का निर्णय लेना आसान काम नहीं था। एक तरफ जहां मुख्य राजनीतिक पार्टियां चुनावों का बहिष्कार कर चुकी थीं, वहीं दूसरी तरफ विभिन्न आतंकवादी संगठनों ने चुनावों में किसी भी तरह से भाग लेने वाले लोगों को जान से मारने की धमकियां तक दे दी थीं। इसी कड़ी में खुद को राज्य के प्रतिनिधि के रूप में दिखाने वाले अलगाववादी नेताओं ने भी खुले तौर पर चुनावों का बहिष्कार किया और राज्य की जनता को भी इनसे दूर रहने की धमकियां दीं।

इस सबके बावजूद राज्य की जनता ने खुले मन से इन चुनावों में न केवल अपना मत दिया, बल्कि लोकतंत्र के इस पर्व को मनाने का एक उत्साह राज्य की जनता में दिखा। जहां तक आतंकवादियों की धमकियों का सवाल था तो भारतीय सेना, राज्य की पुलिस और अन्य सुरक्षाबलों ने एक भी आतंकवादी या कोई भी अन्य अप्रिय घटना को इन चुनावों में घटने नहीं दिया। अंतत: राज्य में चार चरणों में नगर पालिका और नौ चरणों में पंचायत के चुनाव हुए। इनमें नगर पालिका में 50 प्रतिशत के करीब राज्य की जनता ने मतदान किया और पंचायत चुनावों में 75 प्रतिशत के करीब लोगों ने मतदान केंद्रों पर अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई। इतने बड़े स्तर पर चुनावों में मतदान यदि अन्य किसी राज्य में भी होता तो वह भी चर्चा का विषय बन सकता था। जम्मू-कश्मीर में तो यह एक नए विमर्श को जन्म देता ही है, लेकिन राजनीति और जम्मू-कश्मीर के पीछे भागने वाली मीडिया से यह विषय गायब रहा। इन चुनावों ने जम्मू-कश्मीर पर चल रहे बहुत से विमर्शों को विराम दिया है, साथ ही राज्य में चल रहे बहुत से राजनीति और सुशासन संबंधी विषयों को एक निर्णायक दिशा दी है।

— लेखक जम्मू-कश्मीर मामलों के विशेषज्ञ और मीडिया-शोधार्थी हैं।

खुरदुरे सच को साधने की चुनौती

❐ रविंद्र सिंह भड़वाल

भारतीय समाज की बात करें, तो इसने संवाद को सच्चाई के नजदीक आने का माध्यम माना। इसी संवाद कला की आगे कई शाखाएं निकलीं, जो भारतीय मानस को यथार्थ के दर्शन करवाती रहीं और इन्हीं में से एक है भारतीय सिनेमा। 1913 में हरिश्चंद्र से शुरू हुआ भारतीय सिनेमा का सफर अब तक अपने 100 वर्षों से अधिक के अनुभव को जी चुका है...

हर समाज में सत्य से साक्षात्कार की तीव्र इच्छा रही है और इसकी सहज प्राप्ति हेतु इसने अपनी प्रवृत्ति और सहूलियत के अनुसार अपने-अपने रास्ते चुने। भारतीय समाज की बात करें, तो इसने संवाद को सच्चाई के नजदीक आने का माध्यम माना। इसी संवाद कला की आगे कई शाखाएं निकलीं, जो भारतीय मानस को यथार्थ के दर्शन करवाती रहीं और इन्हीं में से एक है भारतीय सिनेमा। 1913 में हरिश्चंद्र से शुरू हुआ भारतीय सिनेमा का सफर अब तक अपने 100 वर्षों से अधिक के अनुभव को जी चुका है। इस राह पर बढ़ते हुए भारतीय सिनेमा ने कई ऐसी फिल्में दीं, जो भारतीय समाज को यथार्थ से रू-ब-रू करवाती रहीं। सामाजिक सच्चाइयों को पर्दे पर उतारने का काम भारतीय सिनेमा जगत ने इतनी नफासत व संजीदगी के साथ किया कि साहित्य की ही तरह इसकी स्वीकार्यता 'समाज के दर्पण' के तौर पर स्थापित हो गई। समाज को जब कभी अपने दर्शन करने की जरूरत महसूस हुई, तो इसने सिनेमाई दर्पण में झांक लिया और सिनेमा ने भी तटस्थ एवं निष्पक्ष रहकर समाज की सेवा की। समय की अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए भारतीय सिनेमा ने खुद में कई अवश्यंभावी बदलाव किए। शुरुआती चरण में जिस सिनेमा में धार्मिक फिल्मों का चलन रहा, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इसके विषय बदल गए और देशभक्ति से ओत-प्रोत फिल्में बनने लगीं। आगे चलकर सिने जगत में सार्थक और समाजोपयोगी मुद्दों पर फिल्में आने लगीं। हाल के समय की बात करें तो सिनेमा द्वारा परोसी जाने वाली विषयवस्तु और उसे प्रस्तुत करने के रंग-ढंग में तेजी से बदलाव आया है। इस बदलाव को मजहब, जाति, महिला प्रस्तुतिकरण जैसे कई कोणों से देखा जा सकता है, लेकिन फिलहाल हमारा प्रयास इसे ग्रामीण दृष्टिकोण से देखने का रहेगा। भारत गांवों का देश रहा है और सिनेमाई रंगों में भी भारतीय गांव की एक गहरी छाप रही है। भारतीय सिनेमा में कई ऐसी प्रभावशाली फिल्में बनीं, जिनमें गांव को बड़ी नफासत के साथ पेश किया गया। ऐसा भी नहीं है कि गांव को फिल्मों के जरिए पर्दे पर प्रस्तुत करने का एकतरफा प्रयास सिनेमा ने किया, बल्कि ग्रामीण जीवन पर बनी लगभग हर फिल्म को दर्शकों से भी खूब प्यार मिला। यहीं से सिनेमा को भारतीय ग्रामीण के विभिन्न पहलुओं को पर्दे पर प्रस्तुत करने की प्रेरणा भी मिली। मदर इंडिया, शोले, ताल जैसी ग्रामीण परिवेश पर बनी फिल्मों की

एक लंबी श्रृंखला रही है, जो भारतीय जनमानस को काफी गहरे तक प्रभावित कर गई। इन्हीं फिल्मों के जरिए भारतीय गांव प्रभावी और सटीक ढंग से संवाद करते रहे हैं। इतना ही नहीं, देश के कई गांव पर्दे पर खुद को इतनी खूबसूरती के साथ पेश कर गए कि आज भी कई बार यकायक हमारी यादों में उभर आते हैं। आज भी कभी कहीं ताल फिल्म का टाइटल सॉन्ग सुनाई पड़ता है, तो चंबा घाटी एकदम से हमारे जहन में सजीव हो उठती है। शोले मूवी का कोई डायलॉग कानों में पड़ जाए, तो कर्नाटक का राजगढ़ गांव तुरंत संवाद की मुद्रा में आ जाता है। लगान फिल्म में गुजरात के चंपानेर गांव के दर्शन होते ही कई ऐतिहासिक दृश्य स्मृति पटल पर उभरने लगते हैं। इस प्रकार से ग्रामीण विषयों और गांवों में फिल्माए जाने वाले दृश्य दर्शकों को लुभाने में हर तरह से खुद को समर्थ साबित करते रहे हैं और इसी वजह से उन्हें पर्दे पर पर्याप्त स्थान मिलता रहा।

पिछले कुछ समय में सिनेमा में जो बदलाव आए हैं, उनके कारण सिनेमाई प्रतिबद्धताएं और दृष्टिकोण बदले-बदले से नजर आ रहे हैं। कलात्मक पक्ष पर व्यावसायिक पक्ष ज्यादा हावी नजर आने लगा है। संभवत: यही कारण है कि सिनेमा, जिसे एक उद्योग के तौर पर बॉलीवुड कहना सही रहेगा, के पर्दे पर गांव को पर्याप्त स्पेस नहीं मिल पा रहा। शहर एकदम से बॉलीवुड पर्दे के केंद्र में आ गए और गांव कहीं हाशिये की ओर बढ़ता चला गया। यह संतोषजनक स्थिति नहीं है। संवाद हमेशा समग्रता के साथ आगे बढ़ता है। इसमें शामिल अगर किसी एक पक्ष को भी नजरअंदाज किया जाने लगेगा, तो इससे संवाद की पूरी प्रक्रिया ही बाधित होगी। तब न तो उस आधे-अधूरे एवं विकृत संवाद के जरिए यथार्थ के दर्शन हो पाएंगे और न ही उस प्रक्रिया में शामिल हर पक्ष के साथ न्याय हो पाएगा। उससे भी बढ़कर संवाद की ऐसी विकृत प्रक्रिया में काफी हद तक संभावना बनी रहेगी कि उसमें गलत और समाज के लिए अनुपयोगी नैरेटिव सेट किए जाते रहें और ऐसा ही काफी हद तक मौजूदा परिस्थितियों में देखने को मिलने लगा है।

आज बॉलीवुड द्वारा दी जा रही फिल्मों को देख कर ऐसा प्रतीत होता है मानो गांव में रचने-बसने वाला भारत एकदम से शहर में तब्दील हो गया हो। फिल्मों में जब दिखाने के लिए भारतीय शहर कम पड़ जाते हैं, तो फिल्म निर्माता विदेशों में बसे चमक-दमक भरे शहरों की ओर रुख कर जाते हैं। शहरों को आधुनिकता के प्रतीक के तौर पर पेश किया जाता है, लेकिन फिल्म निर्माता इस बात को भूल जाते हैं कि देश की अधिकांश आबादी की मनोदशा पर उस फिल्म का क्या असर पड़ेगा। फिल्म निर्माता भले इस हकीकत से मुंह फेर लें, लेकिन गांव की जिंदगी जी रहे लोगों को ऐसी फिल्में एक स्वप्निल दुनिया में ले जा रही हैं, जिसका उनके यथार्थ से दूर-दूर तक कोई खास लेना-देना नहीं होता। इससे भी बढ़कर कई बार तो यही फिल्में ग्रामीण पृष्ठभूमि के दर्शकों में उनके लाइफस्टाइल को लेकर हीन भावना भरने का कार्य भी कर रही होती हैं। आज ग्रामीण जीवन जी रही आबादी में शहरी जीवन जीने की आकांक्षा बढ़ रही है तो इसका एक बड़ा कारण बॉलीवुड को माना जाएगा। ऐसे में जिस बॉलीवुड के निष्पक्ष एवं तटस्थ होने की सहज अपेक्षा रहती है, उसे अपनी प्रतिबद्धताओं और भूमिका की संजीदगी के साथ पड़ताल करते हुए समाज सेवा के दायित्वों का ईमानदारी से निर्वहन करना चाहिए। सवा अरब की आबादी वाले भारत में 70 फीसदी से अधिक आबादी अब भी देश के करीब साढ़े छह लाख गांवों में बसती है। इतनी बड़ी आबादी को एकदम से नजरअंदाज करने का जोखिम उठाना बॉलीवुड के लिए न तो आसान और न ही तर्कसंगत होगा। शहरी जीवन से परे हर गांव का अपना एक अलग संसार है। इस संसार में खानपान, पहनावा, गीत-संगीत, नृत्य से लेकर साहित्य तक को अभिव्यक्त करने की एक अलग भाषा है। इस संसार को समझे-समझाए बिना सिनेमाई पर्दे पर राष्ट्रीयता का समग्र चित्रण संभव ही नहीं है।

समूचे राष्ट्र और समाज का यदि सिनेमा को दर्पण बनना है, तो गांव और शहर दोनों को साथ लेकर चलना होगा। यदि एक भी कड़ी संवाद की इस प्रक्रिया में छूट गई, तो इसके परिणाम भी कल्याणकारी एवं सार्थक नहीं रह जाएंगे।

- लेखक, ग्रामीण-संचार के विशेषज्ञ एंव मीडिया शोधार्थी हैं।

शिकारी आंखों से कुंभ की कवरेज

मीडिया देश, काल और पात्र को केंद्र में रखकर रिपोर्टिंग करे, तो सकारात्मक प्रभाव डालता है। मगर संकट की स्थिति तब पैदा होती है जब मीडिया देश, काल और पात्र को केंद्र में न रखकर, अपना एजेंडा पहले से तैयार रखता है और अपने तय एजेंडे के मुताबिक रिपोर्टिंग करता है...

❐ जयेश मटियाल

जहां भीड़ इकट्ठा होती है, वहां मीडिया का जमावड़ा लगना स्वाभाविक है। मीडिया के इस जमावड़े का असर भीड़ और मीडिया दोनों के ऊपर देखने को मिलता है। मीडिया कवरेज निष्पक्ष हो, भीड़ के मन को पढ़े व उद्देश्य को समझे। मीडिया देश, काल और पात्र को केन्द्र में रखकर रिपोर्टिंग करे, तो सकारात्मक प्रभाव डालता है। मगर संकट की स्थिति तब पैदा होती है, जब मीडिया देश, काल और पात्र को केन्द्र में न रखकर, अपना एजेंडा पहले से तैयार रखता है और अपने तय एजेंडे के मुताबिक रिपोर्टिंग करता है।

कुछ ऐसी ही स्थिति अंतर्राष्ट्रीय मीडिया द्वारा कुंभ मेले पर देखने को मिलती है। अंतर्राष्ट्रीय मीडिया की कुंभ पर कवरेज उस शिकारी की तरह होती है, जो अपने शिकार पर घात लगाये बैठा होता है कि कब शिकार गलती करे और शिकारी उसे धर दबोचे। इसका उदाहरण अल जजीरा का वो आर्टिकल है, जिसमें कुंभ मेले को एक आपदा के रूप में बताया गया। 2003 में नासिक कुंभ मेले में भगदड़ मचने से कुछ लोगों की मृत्यु हुई व कुछ लोग घायल भी हुए, इसे आधार बनाकर अल जजीरा ने पूरे कुंभ के परिणाम को ही विपदापूर्ण बताया। बीबीसी ने तो इस दुर्घटना को 1999 में केरल के एक हिंदू धार्मिक स्थल पर मची भगदड़ से जोड़ दिया। ऐसा पहली बार नहीं हुआ है, जब कुंभ में मची भगदड़ को इस तरह से दिखाया गया हो और न ही इसमें मात्र अल जजीरा व बीबीसी शामिल हैं, बल्कि कई अन्य अंतर्राष्ट्रीय मीडिया भी शामिल हैं।

अंतर्राष्ट्रीय मीडिया द्वारा कुंभ पर आपत्तिजनक कवरेज का एक उदाहरण जनवरी, 2001 इलाहाबाद (प्रयागराज) कुंभ का वह प्रकरण है, जिसमें 'चैनल 4' नामक एक ब्रिटिश पब्लिक सर्विस ब्रॉडकास्टर

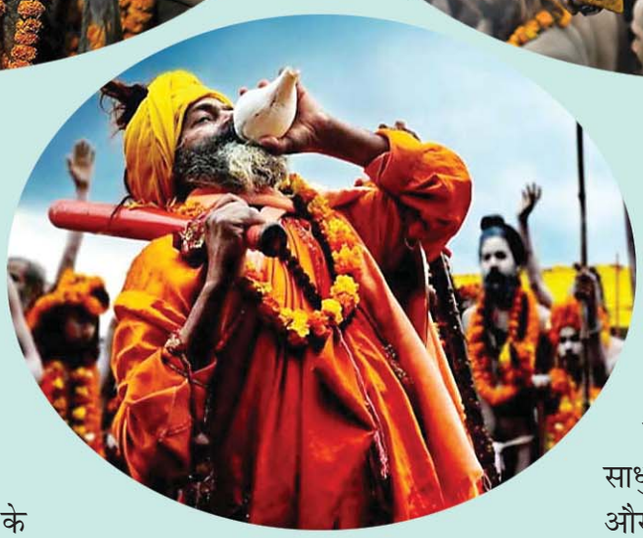

पर कुंभ मेला उत्सव के आयुक्त सदाकांत ने आरोप लगाया व दावा किया कि 'चैनल 4 की टीम ने 25 वर्षीय एक मैक्सिकन महिला को आपत्तिजनक रूप में फिल्माया था और नागा साधुओं व अन्य व्यक्तियों के स्नान के समय अजीबोगरीब फोटोग्राफ लिये गये थे, जो कि भारतीय भावनाओं को आहत करने वाले थे'। इस प्रकरण पर तत्कालीन कुंभ मेला निदेशक अरविंद नारायण मिश्रा के अनुसार 'ब्रिटेन में भारतीय मूल के लोगों व भारत में रहने वाले लोगों ने 'चैनल 4' व 'बीबीसी' द्वारा आपत्तिजनक कवरेज के बारे में शिकायत की है'। जिस कारण कुंभ मेले के समय गंगा में नहाने की जगहों पर फोटो लेने व वीडियो बनाने पर बैन लगा दिया गया। मामले की गंभीरता और अंतर्राष्ट्रीय मीडिया की इस अनैतिकता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि संबंधित मामले को भारत के उच्चायुक्त के साथ ब्रिटेन में उठाने तक की नौबत आ गई थी।

अंतर्राष्ट्रीय मीडिया भारत और कुंभ के प्रति कितना संवेदनशील है, इसका अंदाजा 'वॉल स्ट्रीट जर्नल' के एक आर्टिकल से लगाया जा सकता है, जिसमें बाकायदा लिखा है कि 'धार्मिक सम्मेलनों में भारत त्रासदी के लिए कोई अजनबी नहीं है' यानी भारत धार्मिक सम्मेलनों में दुर्घटनाओं के लिए जाना जाता है। वॉल स्ट्रीट आगे लिखता है कि 'भारत में ऐसी त्रासदियां अक्सर आती रहती हैं, जहां धार्मिक सम्मेलन होते हैं और भीड़ को नियंत्रित करने व सुरक्षा व्यवस्था का अभाव होता है'। इस आर्टिकल में कुंभ 2013 रेल हादसे के साथ, भारतीय मंदिरों व भारतीय धार्मिक स्थलों, जहां पर दुर्घटनायें हुई हैं, को सिलसिलेवार तरीके से बताया गया है।

अंतर्राष्ट्रीय मीडिया कुंभ को पिछड़ेपन का प्रतीक मानता है। उसके लिए यह पर्व केवल मनोरंजन के लिए है। नागा साधु इसके केंद्र में होते हैं, नागा साधुओं की राख से लिपटी नग्न फोटो लेना और फिर उस फोटो व नागा साधुओं का अपने हित के लिए विश्लेषण करना। इनका एजेंडा भी पहले से तय है, कुंभ में आये श्रद्धालुओं की गंदी व अजीबोगरीब तस्वीरें लेना, जिसमें किसी के लंबे बाल, दाढ़ी, जो उलझें हों, शरीर पर कपड़े न हो, राख से लिपटा शरीर हो, जिनका माथा टीके और चंदन से भरा हो, जिसे वे इसे आदिवासी के रूप में दिखा सकें। अपने एजेंडे के मुताबिक अंतर्राष्ट्रीय मीडिया का एकमात्र उद्देश्य भी तो यही है कि साधुओं की अजीबोगरीब तस्वीरें लेना, उनके रहन-सहन, खान-पान को ऐसे दिखाना जैसे वो किसी दूसरी दुनिया के लोग हों। लंगर में बैठे साधु जिनकी अपनी अलग वेशभूषा होती है, साधुओं की चिलम पीते हुए तस्वीरें लेना ताकि उन्हे नशेड़ी साबित कर सकें, साधुओं के हाथ में तलवार, त्रिशूल व डंडों की फोटो,

अंतर्राष्ट्रीय मीडिया कुंभ को पिछड़ेपन का प्रतीक मानता है। उसके लिए यह पर्व केवल मनोरंजन के लिए है। नागा साधु इसके केंद्र में होते हैं, नागा साधुओं की राख से लिपटी नग्न फोटो लेना और फिर उस फोटो व नागा साधुओं का अपने हित के लिए विश्लेषण करना...

वीडियो, और डाक्यूमेंट्री बनाना, जो मात्र आकर्षण का केंद्र बनें। अंतर्राष्ट्रीय मीडिया कवरेज का उद्देश्य व केंद्र भारतीय संस्कृति, मां गंगा व कुंभ की मान्यताओं, कुंभ का महत्व, कुंभ में होने वाली चर्चाओं व उसके परिणामों पर कतई नहीं है।

कुंभ का आयोजन व इसका महत्व मात्र स्नान तक नहीं है, यह संवाद व चर्चा के लिहाज से, भारतीय संस्कृति, हिंदू धर्म की मान्यताओं को पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ाने का सबसे बड़ा प्लेटफॉर्म है। बिना कोई निमंत्रण दिए, बिना किसी प्रलोभन के कुंभ में इतने बड़े जनसैलाब का उमड़ना, कड़ाके की ठंड में भी गंगा में डुबकी लगाना, साधु-संतों के जप-तप, त्याग को समझना, कुंभ के प्रति भक्तों की भावनाओं को समझ पाना, यह सब अंतर्राष्ट्रीय मीडिया के लिए दूर की कौड़ी है। ऐसा इसलिए भी, क्योंकि उनके यहां ऐसा अद्भुत संगम न तो कभी देखने को मिला है और न ही कभी मिलेगा। यह संगम मात्र नदियों का नहीं है, यह तो विचारों का है, मान्यताओं का है, आस्थाओं का है। सामान्य व्यक्ति से लेकर साधु-संतों और विभिन्न जाति, लिंग, आय, आयु का संगम है। अंतर्राष्ट्रीय मीडिया कुंभ को भारतीय नजरिये से, धार्मिक आस्था और नैसर्गिक शांति के प्रयास को देखे व समझे, इसकी अपेक्षा करना स्वयं को झूठा दिलासा देना व धोखे में रखने जैसा है।

कुंभ मेला भारत की प्राचीन संस्कृति का प्रतीक है, वैश्विक स्तर पर कुंभ ने अपना परचम लहराया है, कुंभ के महत्व का अंदाजा अंतर्राष्ट्रीय मीडिया को इस बात से लगाना चाहिए कि यूनेस्को की अमूर्त सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण संबंधी अंतर सरकारी समिति ने दक्षिण कोरिया के जेजू में चार से चार दिसंबर, 2017 को अपनी 12वीं सत्र बैठक में कुंभ मेले को 'मानवता की अमूर्त सांस्कृतिक धरोहर' की प्रतिनिधि सूची में शामिल किया है। इस सूची में बोत्सवाना, कोलंबिया, वेनेजुएला, मंगोलिया, मोरक्को, तुर्की और संयुक्त अरब अमीरात व अन्य देशों के विभिन्न सांस्कृतिक पर्व शामिल हैं।

मकर संक्रांति के दिन प्रथम शाही स्नान के साथ प्रयागराज में कुंभ शुरू हो रहा है। कुंभ मेले की कवरेज के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मीडिया प्रतिनिधियों की खास व्यवस्था के लिए मीडिया कैंप बनाया गया है। किसी भी देश की छवि बनाने व बिगाड़ने में मीडिया आज मुख्य हथियार के रूप में काम कर रहा है।

ऐसे में वैश्विक स्तर पर अंतर्राष्ट्रीय मीडिया भारत व कुंभ को किस रूप में दिखा रहा है, इस पर निगरानी रखना व गौर करना आवश्यक है।

लेखक, युवा पत्रकार और मीडिया-जनसंचार के विद्यार्थी हैं।

भारतीयता का अहम ब्रांड बन चुका है कुंभ

❐ अखिल शर्मा

2019 में होने वाला सबसे बड़ा आयोजन कुंभ है। विज्ञापन की शब्दावली में कहें, तो कुंभ अपने आप में भारतीयता का बहुत बड़ा ब्रांड है, लेकिन इस बार सरकारी स्तर पर ऐसा बहुत कुछ किया जा रहा है, जिससे इस ब्रांड को और मजबूती मिल सके।

कुंभ में 75 देशों के 12 करोड़ लोगों के आने की संभावना है। कुंभ के माध्यम से विश्व भर के तमाम देश भारत की संस्कृति, धर्म, आस्था आदि के बारे समझ सकते हैं। इस बात को मद्देनजर रखते हुए भारत सरकार द्वारा 72 देशों के राजदूतों को कुंभ दौरे के लिए आमंत्रित किया गया है।

सूचना विभाग की तरफ से दिल्ली और मुंबई जैसे अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डों पर 100 से ज्यादा एलईडी स्क्रीन पर कुंभ का प्रचार किया जा रहा है, ताकि कुंभ की तरफ अंतरराष्ट्रीय पर्यटक आकर्षित हों और उन्हें कुंभ की पवित्रता जानने व देखने का मौका मिले। इस बार का 15वां प्रवासी भारतीय दिवस 21 से 23 जनवरी के बीच वाराणसी में आयोजित किया जा रहा है।

सम्मेलन के बाद 24 जनवरी को सभी सहभागियों को प्रयागराज जाने और कुंभ जैसे महापर्व को देखने का अवसर दिया जाएगा। प्रवासी दिवस को वाराणसी में आयोजित करना भी एक मार्केटिंग रणनीति है, ताकि अंतरराष्ट्रीय पर्यटक इस माध्यम से भी कुंभ की तरफ आकर्षित हों।

कुंभ मेले के लिये पंजाब नेशनल बैंक ने विशेष तौर पर डिजीटलीकरण का मॉडल पेश करने के लिये उत्तर प्रदेश सरकार के साथ साझेदारी कर एक स्वदेशी स्पेशल रूपे कार्ड जारी किया है, जो बिना इंटरनेट के भी काम करेगा। स्पेशल रूपे कार्ड सुविधा के लिये एक हजार दुकानों में खास तरह की मशीन उपलब्ध करवाई जाएगी, जिससे श्रद्धालुओं को लेन-देन में आसानी हो।

कुंभ की ब्रांडिग और पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए पहली बार उत्तर प्रदेश पर्यटन विभाग द्वारा पर्यटकों को सामान्य किराये में निजी कम्पनी के हेलीकॉप्टरों से गंगा, संगम और कुंभ का नजारा दिखाने की तैयारी की है।

प्रयाग में होने वाले कुंभ का प्रचार स्लोगन 'चलो कुंभ चलें' के साथ शुरू हुआ। इस स्लोगन को लॉन्च करने का उद्देश्य भी कुंभ का विश्व भर में प्रचार ही है। इसे मीडिया में भी काफी लोकप्रियता मिली है। भारत में सोशल मीडिया, अखबार, टीवी, रेडियो जैसे कई माध्यमों द्वारा कुंभ का प्रचार जोर-शोर से किया जा रहा है।

लेखक, पत्रकारिता एंव जनसंचार के विद्यार्थी हैं।

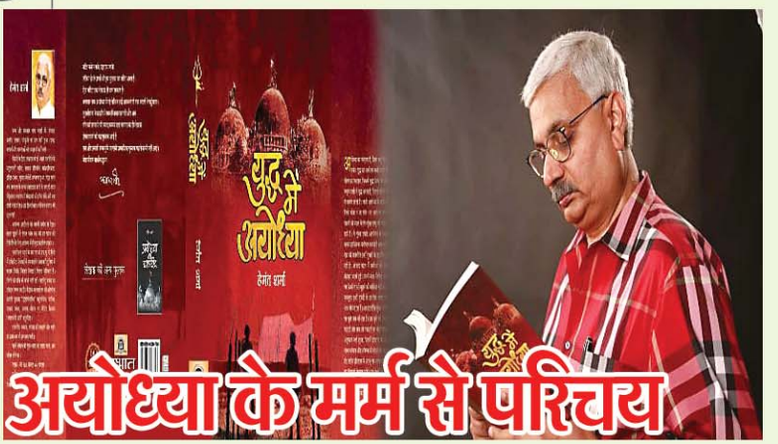

किताब का नाम : युद्ध में अयोध्या
लेखक : हेमंत शर्मा
प्रकाशन : प्रभात प्रकाशन
मूल्य : 900 रुपए (हार्डकवर), अमेजॉन पर 450 रुपए में उपलब्ध।

अयोध्या कोई आधुनिक परिघटना नहीं है। इसे चुनावी मुद्दा समझने की भूल तो कोई सांस्कृतिक निरक्षर ही कर सकता है। यह धर्मपालन की सतत् आकांक्षा का रामचरितमानस है और सप्तपुरियों को स्वीकार करने वाला भारतीय मानस भी। दुर्भाग्य से हमारी स्मृति से अयोध्या की यह छवि छीन ली गई है। राजनीति ने अयोध्या के चहुंओर सीमित दायरे का पहरा खड़ा कर दिया है। इसलिए हमारी अयोध्या-यात्रा 1990 के उस पार जाने को तैयार नहीं है, और 1990 के पहले जाए बगैर हम उस अयोध्य-परम्परा से जुड़ नहीं सकते, जो मर्यादा और धर्मपालन के लिए सदैव सजग रहती है।

हेमंत शर्मा की पुस्तक 'युद्ध में अयोध्या' इस काल अवरोध को तोड़ने का बौद्धिक अनुष्ठान है। अयोध्या के मर्म से परिचित होने का समसामयिक प्रयास है। पुस्तक को पढ़ने के बाद अयोध्या यकायक बहुत बड़ी हो जाती है और हमारे अस्तित्व का अहम हिस्सा भी बन जाती है। लेखक ने भी संभवत: अयोध्या को इसी रूप में लिया है-'अयोध्या एक लक्षण है, मजहबी असहिष्णुता के विरुद्ध प्रतिकार का। अयोध्या प्रतीक है, भारत राष्ट्र के आहत स्वाभिमान का।

अयोध्या एक संकल्प है, अपनी प्राचीन सांस्कृतिक से हर कीमत पर जुड़े रहने का। अयोध्या शमशीर से निकली उस विचारधार का प्रतिकार है, जो सर्वपंथ समादर, सर्वग्राही और उदार सहिष्णुता के भारतीय आदर्शों को स्वीकार नहीं करती। उसे कुचलती जाती है।' (पृष्ठ 9)

पुस्तक अयोध्या को राजनीति के दायरे से बाहर निकालकर सभ्यतागत विषय बना देती है। और इसीलिए अयोध्या का संघर्ष, सभ्यता का संघर्ष बन जाता है। वास्तविकता भी यही है कि अयोध्या का आकलन सभ्यतागत संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में किए बगैर उसकी महत्ता से परिचित नहीं हुआ जा सकता। 'इन गुम्बदों को लेकर आक्रोश हर काल में था। पर किसी ने उसे समझने और सुलझाने की कोशिश नहीं की। दरअसल, यह चुनाव की राजनीति नहीं, दो विचारधाराओं का टकराव था, जिसमें एक-विचारधारा, उपासना स्वातंत्र्य, सर्वपंथ समभाव, पंथनिरपेक्षता पर टिकी थी। तो दूसरी-मजहबी एकरूपता, धार्मिक विस्तारवाद और असहिष्णुता पर टिकी थी।' (पृष्ठ 10)

लेखक अयोध्या और भगवान राम के संदर्भों में डॉ. राम मनोहर लोहिया के निष्कर्षों से सहमत हैं। राजनीतिक संघर्षों को दरकिनार कर ही अयोध्या को सप्तपुरी और श्रीराम को मर्यादापुरुषोत्तम के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।' डॉ. राममनोहर लोहिया को अपने जमाने का सबसे बड़ा 'सेकुलर' मानता हूं। उनका जन्म फैजाबाद में हुआ था। वे कहते थे 'राम की पूर्णता मर्यादित व्यक्तित्व में है, कृष्ण की उन्मुक्त और शिव असीमित व्यक्तित्व के स्वामी हैं। मैं जानता हूं, इस देश का मानस गढ़ने में राम, कृष्ण और शिव की भूमिका रही है।...राम हिन्दुस्तान की उत्तर-दक्षिण की एकता के देवता थे।' लेकिन दुर्भाग्य देखिए, लोहिया के चेले यह नहीं समझ पाए और वे आडवाणी से लड़ते-लड़ते राम से लड़ने लगे। अगर वामपंथी मित्रों ने भी लोहिया और गांधी की नजर से राम को देखा होता तो वे अयोध्या आंदोलन के मर्म को आसानी से समझ लेते।' (पृष्ठ 10)

एक वैचारिकी के प्रतीक रहे नामवर सिंह अयोध्या पर लिखी किसी पुस्तक को पढ़कर यह कह उठें कि जीवन सार्थक हुआ तो यह बहुतों के लिए आश्चर्य का विषय बन जाता है। आलोचना करते समय शायद ही किसी किताब में उन्होंने जीवन की सार्थकता ढूंढी हो। 'युद्ध में अयोध्या' किताब में सच के इतने सारे आयाम इतनी तीव्रता के साथ आए हैं कि झुठलाने की स्थिति बचती ही नहीं।

यह किताब पढ़ने के बाद आपको यह आभास होता है कि क्यों अयोध्या पांच सौ सालों का संघर्ष है। कैसे अनेकों पीढ़ियां इसके लिए संघर्षरत रहीं। कैसे करपात्री जी महाराज, महंत दिग्विजय नाथ, हनुमान प्रसाद पोद्दार और पटेश्वरी प्रसाद सिंह ने 1949 में रामजन्म भूमि आंदोलन की नींव रखी। क्यों नेहरू के चाहने के बावजूद तत्कालीन जिलाधिकारी के.के.के. नायर के चातुर्य के कारण रामलला वहीं पर विराजमान रहे। उत्खनन से निकले सच ने कैसे मार्क्सवादी इतिहास का कब्रिस्तान तैयार किया, ऐसा बहुत कुछ है जो इस किताब को महत्वपूर्ण दस्तावेज बना देता है। और सब कुछ समेटने के बावजूद किताब एकदम सहज है। यह काम कोई पत्रकार ही कर सकता है। यह पुस्तक सभी सजग युवाओं के पास होनी ही चाहिए। पत्रकारिता के विद्यार्थियों के लिए तो यह तथ्य, कथ्य और भाषा तीनों के लिहाज से एक जरूरी पुस्तक बन जाती है।

-डॉ. जयप्रकाश सिंह

प्रेस स्वतंत्रता सूचकांक

रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स की सालाना रिपोर्ट में यह बात निकलकर सामने आई है कि प्रेस स्वतंत्रता सूचकांक में पिछले साल के मुकाबले भारत तीन पायदान नीचे खिसक कर 136वें स्थान पर आ गया है। 2018 के 11 महीनों में दुनिया भर में 80 पत्रकारों की हत्या हुई है। यह खुलासा रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स (आरएसएफ) की रिपोर्ट से हुआ है। रिपोर्ट के मुताबिक इस साल 348 पत्रकारों को जेल में बंद किया गया और जबकि 60 से ज्यादा को बंधक बनाया गया। वहीं तीन पत्रकार अब भी लापता हैं। रिपोर्ट में बताया गया है कि जिन 80 पत्रकारों की हत्या की गई है, उनमें से 63 पेशेवर पत्रकार थे। इन आंकड़ों के आधार पर बताया गया है कि इस साल पूरी दुनिया में पत्रकारों की हत्या में बढ़ोतरी हुई है। प्रेस की आजादी को सीमित करने की कोशिशों पर चिंता जाहिर करते हुए कहा गया है, लोकतांत्रिक देशों में हालात सच्चाई से परे भावुक अपीलों, दुष्प्रचार और आजादी के दमन के दौर में हैं। लोकतांत्रिक देश सूचकांक में लगातार नीचे खिसक रहे हैं। आरएसएफ ने रिपोर्ट के साथ एक बयान जारी करते हुए कहा, 'पत्रकारों के खिलाफ हिंसा इस साल अभूतपूर्व स्तर पर पहुंच चुकी है और अब स्थिति गंभीर है। इसके लिए राजनेताओं, धार्मिक नेताओं और कारोबारियों को भी जिम्मेदार ठहराया गया है। भारत, अमेरिका और मेक्सिको जैसे युद्ध न झेलने वाले देश भी पत्रकारों के लिए जोखिम भरे बने हुए हैं।'

प्रेस स्वतंत्रता सूचकांक में नॉर्वे पहले और उत्तर कोरिया आखिरी स्थान पर है। बीते छह साल तक पहले पायदान पर रहा फिनलैंड तीसरे नंबर पर पहुंच गया है। कई देशों का प्रदर्शन पिछले साल की तुलना में कमजोर रहा है। ब्रिटेन, अमेरिका और चिली दो-दो स्थान की गिरावट के साथ क्रमश: 40वें, 43वें और 33वें स्थान पर हैं। न्यूजीलैंड आठ स्थान की गिरावट के साथ 13वें स्थान पर है। रूस में प्रेस की आजादी की स्थिति में कोई सुधार नहीं आया है। वह पिछले साल की तरह 148वें स्थान पर ही बना हुआ है। जुलाई के नाकाम तख्तापलट के बाद तुर्की की स्थिति भी भयावह हो गई है। भारत, रूस, चीन सहित 72 देशों में प्रेस की आजादी को लेकर हालात बहुत गंभीर हैं। इन देशों में मीडिया को निशाना बनाने की घटनाएं सामान्य हो गई हैं।

गौरतलब है कि सऊदी पत्रकार जमाल खशोगी और स्लोवाकिया के डाटा जर्नलिस्ट यान कुसिएक की हत्या इस वर्ष खास तौर पर चर्चा में रही। इसके अलावा 21 जनवरी को मेक्सिको से, 14 मार्च को हैती से और सात जून को रूस से गायब हुए तीन पत्रकारों का अब तक कोई सुराग

नहीं मिला है। भारत की बात करें, तो बिहार में 25 मार्च को दो पत्रकारों की एसयूवी से कुचलकर हत्या कर दी गई। इसके अलावा मध्य प्रदेश के भिंड जिले में पत्रकार संदीप शर्मा की हत्या इसलिए कर दी गई थी, क्योंकि वह रेत माफिया के खिलाफ पत्रकारिता कर रहे थे।

सरकार या प्रशासन के खिलाफ अपनी राय जाहिर करने वालों के लिए चीन सबसे बड़ी जेल बना हुआ है। आरएएसफ के मुताबिक चीन में गैर पेशेवर पत्रकारों को बड़ी संख्या में कैद किया गया। रिपोर्ट कहती है, 'सोशल नेटवर्कों या मैसेजिंग सर्विस में सिर्फ एक पोस्ट लिखने के कारण उन्हें अकसर अमानवीय परिस्थितियों में कैद किया गया।' पेशेवर पत्रकारों के लिए तुर्की सबसे बड़ा कैदखाना बना। उसके बाद मिस्त्र, ईरान और सऊदी अरब का जिक्र है। मध्य पूर्व के देशों में 2018 में 60 पत्रकारों को कैद किया गया। इन देशों के अलावा आतंकवादी संगठन इस्लामिक स्टेट ने अब तक 24 पत्रकारों को बंधक बनाया हुआ है। यमन के हूथी विद्रोहियों के कब्जे में 16 जर्नलिस्ट हैं।

पत्रकार किशोरचंद्र वांगखेम एनएसए के तहत फिर गिरतार

सोशल मीडिया पर मणिपुर के मुख्यमंत्री की आलोचना करने वाले पत्रकार किशोरचंद्र वांगखेम को स्थानीय अदालत ने एक साल हिरासत में रखने की सजा सुनाई है। वांगखेम को यह सजा नेशनल सिक्यॉरिटी एक्ट (एनएसए) के तहत दी गई है। वीडियो में कथित तौर पर पत्रकार वांगखेम ने मुख्यमंत्री के खिलाफ अपमानजनक टिप्पणी की थी। पत्रकार ने अंग्रेजी और मेइती भाषा में कई वीडियो अपलोड किए थे। इस वीडियो में वांगखेम ने कहा था, 'मैं

आरएएसफ के मुताबिक चीन में गैर पेशेवर पत्रकारों को बड़ी संख्या में कैद किया गया। रिपोर्ट कहती है, 'सोशल नेटवर्कों या मैसेजिंग सर्विस में सिर्फ एक पोस्ट लिखने के कारण उन्हें अकसर अमानवीय परिस्थितियों में कैद किया गया।' पेशेवर पत्रकारों के लिए तुर्की सबसे बड़ा कैदखाना बना। उसके बाद मिस्त्र, ईरान और सऊदी अरब का जिक्र है। मध्य पूर्व के देशों में 2018 में 60 पत्रकारों को कैद किया गया...

दुःखी और हैरान हूं कि मणिपुर की सरकार लक्ष्मीबाई की जयंती (19 नवंबर को) मना रही है। मुख्यमंत्री यह दावा करते हैं कि भारत को एकता के सूत्र में पिराने में झांसी की रानी का योगदान था, लेकिन मणिपुर के लिए उन्होंने कुछ नहीं किया। उन्होंने इसे मणिपुर के स्वतंत्रता सेनानियों का अपमान बताया और हिंदुत्व की कठपुतली बताते हुए पीएम नरेंद्र मोदी और मणिपुर के सीएम पर अपमानजनक शब्दों का भी इस्तेमाल किया।

यह वीडियो सामने आने के बाद पत्रकार किशोर चंद्र वांगखेम को 20 नवंबर को गिरफ्तार कर लिया गया। हालांकि 26 नवंबर को वेस्ट इंफाल की सीजेएम कोर्ट ने उन्हें 70 हजार के बॉन्ड पर जमानत दे दी। जमानत के वक्त कोर्ट ने यह भी कहा कि पत्रकार की टिप्पणी भारत के प्रधानमंत्री और मणिपुर के मुख्यमंत्री के खिलाफ अपने विचार की अभिव्यक्ति थी, लेकिन इसे राजद्रोह नहीं कहा जा सकता। कोर्ट के कहने के बावजूद अगले ही दिन 27 नवंबर को पत्रकार वांगखेम को एनएसए के तहत फिर गिरफ्तार कर लिया गया और जेल भेज दिया गया। इस बार वेस्ट इंफाल के जिला न्यायाधीश ने एक नया ऑर्डर जारी किया और कहा कि अगले आदेश तक पत्रकार को एनएसए 1980 के सेक्शन 3(2) के तहत हिरासत में रखना चाहिए। फिर दोबारा उन्होंने नए आदेश जारी किए, जिसमें यह कहा गया है कि पत्रकार को 12 महीनों तक हिरासत में रहना होगा।

मणिपुर गृह विभाग द्वारा 14 दिसंबर को जारी किए गए बयान में बताया गया कि इस मामले में 11 दिसंबर को एनएसए के अडवाइजरी बोर्ड ने वांगखेम के खिलाफ सभी आरोपों की जांच की और दो दिनों बाद स्पष्ट किया कि वांगखेम पर एनएसए के तहत कार्रवाई करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य हैं।

पुलिस इंस्पेक्टर के बॉबी ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि फेसबुक पर सर्फिंग करते समय उन्होंने पाया कि वीडियो में 'घृणा या अपमान करना या इसकी कोशिश करना या सरकार के प्रति असहमति को उत्तेजित करने का प्रयास करना पाया।' उन्होंने यह भी लिखा कि वांगखेम ने 'अपनी मिडिल फिंगर के साथ असंवैधानिक और अभद्र शब्दों का इस्तेमाल किया था...।'

यह पहली बार नहीं है जब वांगखेम को फेसबुक पोस्ट के लिए हिरासत में लिया गया है। उन्हें अगस्त में भी हिरासत में लेकर चार दिनों के लिए जेल में डाला गया था, जब उन्होंने भाजपा का 'बुद्धू जोकर पार्टी' (मूर्खों की पार्टी) के रूप में मजाक उड़ाया था। पुलिस ने कहा कि उन्होंने उन पोस्ट्स को भड़काऊ पाया था।

सभी विदेशी पत्रकारों को भारतीय कानून का समान करना होगा

गृह मंत्रालय के एक अधिकारी ने विदेशी पत्रकारों के संबंध में कहा है कि सभी विदेशियों को भारतीय कानून का सम्मान करना होगा और जो विदेशी कानून का उल्लंघन करते पाए जाएंगे, वे दंड के भागी होंगे। अधिकारी का यह बयान वीजा नियमों का उल्लंघन करने के आरोप में अंतरराष्ट्रीय न्यूज एजेंसी रॉयटर्स के एक पत्रकार को भारत में प्रवेश की अनुमति नहीं देने के बाद आया है। हालांकि अधिकारी ने यह भी कहा कि कार्रवाई का मतलब यह नहीं है कि उल्लंघन करने वाले को हमेशा के लिए ब्लैक लिस्ट में डाल दिया जाएगा।

दरअसल रॉयटर्स के दिल्ली स्थित कार्यालय में मुख्य फोटोग्राफर कैथल मैकनॉटन को विदेश यात्रा से यहां पहुंचने के बाद हवाई अड्डे से वापस भेज दिया गया था। इस पर अधिकारी ने पीटीआई-भाषा से कहा कि यह कार्रवाई स्थायी नहीं है और छह महीने या साल भर बाद इसकी समीक्षा की जा सकती है। कैथल मैकनॉटन आइरिश नागरिक हैं। उन्हें इस साल मई में पुलित्जर पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। उन पर आरोप है कि उन्होंने कथित तौर पर जम्मू-कश्मीर में बिना अनुमति के प्रतिबंधित और संरक्षित क्षेत्रों की यात्रा की और वैध अनुमति के बिना राज्य से रिपोर्ट भी भेजी। इसे लेकर मंत्रालय के अधिकारी ने कहा, 'हो सकता है उन्होंने कुछ पुरस्कार जीते हों, लेकिन वह उन्हें भारतीय कानूनों का उल्लंघन करने की अनुमति नहीं देता है।'

अधिकारी ने आगे कहा, 'विदेश मंत्रालय नियमित रूप से विदेशी पत्रकारों को भारत के नियम और नियमनों की जानकारी देता है। कुछ स्थानों पर विदेशियों को अनुमति लेने की जरूरत होती है। अगर आप इन नियमों और नियमनों का उल्लंघन करते हैं तो हम कार्रवाई करने के लिये बाध्य हैं।'

इस मामले में एक अन्य अधिकारी ने कहा कि विदेशी संवाददाताओं को सीमावर्ती जिलों, रक्षा प्रतिष्ठानों और सामरिक महत्व के अन्य स्थानों, राष्ट्रीय उद्यानों और वन्यजीव अभयारण्यों जैसे प्रतिबंधित और संरक्षित क्षेत्रों में फिल्माने के लिए गृह मंत्रालय से पूर्व मंजूरी लेनी होती है।

गृह मंत्रालय और विदेश मंत्रालय ने विदेशी पत्रकारों के लिए प्रोटोकॉल समीक्षा पर भी चर्चा की है। मई में विदेश मंत्रालय ने भारत में रह रहे विदेशी पत्रकारों को याद दिलाया था कि विदेशी 'संरक्षित क्षेत्र' आदेश, 1958 के तहत संरक्षित क्षेत्रों की यात्रा करने के लिए उन्हें अनुमति लेनी होगी। इन क्षेत्रों में अरुणाचल प्रदेश और सिक्किम के सभी हिस्से और हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, राजस्थान और उत्तराखंड के कुछ हिस्से शामिल हैं...

गृह मंत्रालय और विदेश मंत्रालय ने विदेशी पत्रकारों के लिए प्रोटोकॉल समीक्षा पर भी चर्चा की है। मई में विदेश मंत्रालय ने भारत में रह रहे विदेशी पत्रकारों को याद दिलाया था कि विदेशी 'संरक्षित क्षेत्र' आदेश, 1958 के तहत संरक्षित क्षेत्रों की यात्रा करने के लिए उन्हें अनुमति लेनी होगी। इन क्षेत्रों में अरुणाचल प्रदेश और सिक्किम के सभी हिस्से और हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, राजस्थान और उत्तराखंड के कुछ हिस्से शामिल हैं।

बदरुद्दीन अजमल की बदसलूकी

असम के ऑल इंडिया यूनाइटेड डेमोक्रेटिक फ्रंट (एआईयूडीएफ) चीफ बदरुद्दीन अजमल ने एक पत्रकार को सिर फोड़ने की धमकी दी है। प्रेस कॉन्फ्रेंस में पत्रकार के सवाल पूछने से अजमल इतने तिलमिला गए कि पत्रकार से अभद्रता करने लगे और सिर फोड़ने की धमकी दी। अजमल यहीं नहीं रुके, उन्होंने पत्रकार को कुत्ता और कुत्ते का बच्चा तक कह डाला।

बदरुद्दीन अजमल असम की धुबरी लोकसभा सीट से सांसद हैं। पंचायत चुनावों में दक्षिण सलमारा जिले में जीते उम्मीदवारों को लेकर वह पत्रकारों से बातचीत कर रहे थे। इस दौरान एक पत्रकार ने उनसे 2019 लोकसभा चुनाव से जुड़ा एक प्रश्न पूछा कि क्या वह भविष्य में बीजेपी या कांग्रेस के साथ गठबंधन करना चाहेंगे? इसी सवाल को लेकर अजमल अपना आपा खो बैठे और पत्रकार को ही गाली देने लगे। इस दौरान अजमल के साथ बैठे उनके अन्य साथी हंसते रहे और अजमल पत्रकार को गाली देते रहे।

इसके बाद अजमल ने कहा, 'तुम सब एक जैसे हो, मुझे निशाना बनाना चाह रहे हो। तुम्हें बीजेपी से कितने पैसे मिले हैं? भाग जाओ नहीं तो मैं तुम्हारा सिर फोड़ दूंगा। जाओ मेरे खिलाफ केस दर्ज करवा लो। मेरे पास हजारों लोग हैं, जो मेरे लिए लड़ते हैं।' पत्रकार से अजमल ने कहा, 'आप मुझे कितने रुपये दोगे? क्या यह पत्रकारिता है? आप जैसे पत्रकार पूरे समुदाय को बदनाम कर रहे हैं।' आपा खोते हुए उन्होंने एक पत्रकार से माइक भी छीन लिया। सामने आए वीडियो में साफ देखा जा सकता है कि किस तरह अजमल अपने सामने रखे टीवी चैनलों के माइक उठाकर फेंक देते हैं। इस दौरान अजमल के साथ बैठे उनके अन्य साथी हंसते रहे और अजमल पत्रकार को गाली देते रहे।

संकलन : रविंद्र सिंह भड़वाल